शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 7 अंक : 3 1 अक्टूबर 2014

(आश्विन-कार्तिक, विक्रम संवत् 2071)

संरक्षक

मुकुन्द कुलकर्णी

प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक

प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक

विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी

बसन्त जिन्दल 9414716585

नौरंग सहाय भारतीय

9460142051

प्रकाशकीय कार्यालयः

82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,

जयपुर (राज.) 302001

दूरभाषः 9414040403,9782873467

दिल्ली ब्यूरो

शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,

कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053

दूरभाषः 011-22914799

E-mail:

shaikshikmanthan@gmail.com

Visit us at :

www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 15/-

वार्षिक शुल्क 150/-

आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक

में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल

का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

शिक्षा और स्वदेशी- मा.गो.वैद्य

कंकड़-पत्थरों वाली जमीन। जड़ और अचेत जमीन। किन्तु जब हम उसे अपने हृदय के अन्दर निवास करने वाले मातृभाव से जोड़ते हैं, तो फिर वह 'मातृभूमि' बनती है। फिर उसका सारा जड़त्व, अचेतनत्व समाप्त हो जाता है। उस का कण कण हमारे लिये पवित्र बन जाता है। और बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसा भावकवि उसे 'त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणी' याने तुम दश आयुध धारण करने वाली माँ दुर्गा हो, 'कमला कमलदलविहारिणी'। कमलदलों में विहार करने वाली लक्ष्मी हो, 'वाणी विद्यादायिनी'। विद्या देने वाली भगवती सरस्वती हो, इस प्रकार उसकी महत्ता को गौरवान्वित करता है। एक बार हमने अपनी भूमि को, अपने देश को मातृभूमि मान लिया कि फिर हमारा सारा भावविश्व ही परिवर्तित हो जाता है।

6

अनुक्रम

4.	स्वदेशी शिक्षा से ही भारतीय व्यक्तित्व संभव	- सन्तोष पाण्डेय
8.	शिक्षा के स्तर में सुधार आवश्यक	- डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा
11.	स्वदेशी भाषा और शिक्षा	- बजरंगी सिंह
13.	स्वदेशी शिक्षा के प्रथम पुजारी राजनारायण बसु	- विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी
15.	स्वेदशी एवं शिक्षक की भूमिका	- डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी
19.	Bhartiya Knowledge System ...	- Dr. TS Girishkumar
21.	Swadeshi Self Esteem and ...	- Prof. A. K. Gupta
23.	In school, but are they learning?	- Subodh Varma
25.	Vedic learning is no one's ...	- Amish
27.	शोध परक संस्कृति की बाधाएं	- शशांक द्विवेदी
31.	विदेशी शिक्षा की सार्थकता का सवाल	- अभिषेक कुमार सिंह
33.	चरित्र निर्माण में शिक्षक की भूमिका	- डॉ.जगदीश सिंह दीक्षित
35.	मोदी का 'गुरुमंत्र' और शिक्षक	- प्रो. श्यामानन्द सिंह
37.	शिक्षा, सरकार की सौतेली सन्तान	- चन्द्र मोहन
39.	गतिविधि	

बहुभाषिकता और हिन्दी

❑ डॉ. सुरेन्द्र भटनागर

आज अंग्रेजी हमारी बौद्धिक क्षमता है। हम इसे इसलिए नहीं खोना चाहेंगे कि यह एक औपनिवेषिक स्मृतिचिन्ह है। किन्तु अंग्रेजी जितनी हमारी आवश्यकता है, उससे अधिक हम जानते हैं। भारत सही अर्थों में वैश्विक क्षमताओं वाला राष्ट्र बने, इसके लिए हमें विश्वसंस्कृतियों से सीधा जुड़ना होगा। यह काम हम जितनी तेजी से करेंगे, उतनी ही हम अपने आर्थिक व सामाजिक विकास को गति दे पाएंगे। शिक्षा और सूचना-तकनीकी किसी भी राष्ट्र के आर्थिक समृद्धि और सुरक्षा का एकमात्र औजार है। अंग्रेजी के ऊपर एकमात्र निर्भरता से हमारा यह उद्देश्य पूरा नहीं होता। जो लोग सोचते हैं कि भारत की एक अरब से अधिक जनसंख्या को अंग्रेजी में शिक्षित कर हम उन्हें उच्च शिक्षा और उच्च रोजगार के अवसर दे पाएंगे, यह एक दिवास्वप्न है।

29

स्वदेशी शिक्षा से ही भारतीय व्यक्तित्व संभव

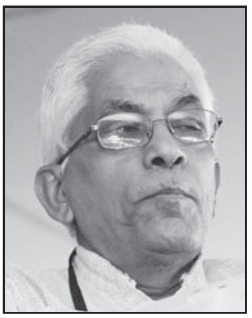

❑ सन्तोष पाण्डेय

शिक्षा में स्वदेशी का अभिप्रायः भारतीय चिन्तन-मनन व भारतीय ज्ञान पद्धति से है। भारतीय ज्ञान पद्धति वह है जो वेदों से प्राप्त ज्ञान पर आधारित है। वेदों में निहित ज्ञान अनुभव सिद्ध सत्य है। यह ज्ञान भारतीय संस्कृति के रूप में प्रकट होता है। स्वामी विवेकानन्द जी 'स्वाभिमान' का विचार स्वदेशी की धारणा पर आधारित है। वास्तव में स्वाभिमान का दूसरा आधार स्वयं को पहचानना है। अपने विगत को पहचानना ही संस्कृति है। 'स्वदेशी' की अवधारणा स्वयं में एक संस्कृति व संस्कार है। 'स्वदेशी' की धारणा जीवन के सभी पक्षों में मार्गदर्शक का कार्य करती है। विश्व में सभी समाज अपनी जड़ों की खोज में जुटे रहते हैं। देश की शिक्षा प्रणाली भी ऐसी होनी चाहिये जो अपनी जड़ों को पहचान कर 'स्वाभिमान' को प्रेरित करने वाली हो। देश के स्वाभिमान एवं सांस्कृतिक आचरण से युक्त व्यक्तित्व व व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं को वास्तविकता में बदलने का गुण स्वदेशी शिक्षा व्यवस्था से ही संभव है।

संपादकीय

देश की राजनीतिक सत्ता में परिवर्तन होने व तीन दशकों के बाद किसी एक ही राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत मिलने तथा परिपक्व व दूरदर्शी राजनीतिक नेतृत्व के उभार के साथ ही जीवन के हर क्षेत्र में दूरगामी व आधारभूत परिवर्तन दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक ही है। शिक्षा का क्षेत्र भी इन परिवर्तनों के परे नहीं रह सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही प्रयत्न रहे हैं कि शिक्षा व्यवस्था को देश की आकांक्षाओं व अपेक्षाओं के अनुरूप ही ढाला जाय। शिक्षा ऐसी हो जो समाज, संस्कृति व यहाँ के वातावरण से जुड़ी हो। अनेक प्रयासों के बावजूद शिक्षा व्यवस्था को मैकाले प्रारूप की औपनिवेशिक शिक्षा में व्यापक परिवर्तन नहीं हो पाये हैं। आज भी शिक्षा उन्हीं मूलभूत अवधारणाओं व दृष्टिकोण से परिपूर्ण है, जो शिक्षित व्यक्ति को उसके समाज, संस्कृति व वातावरण से जोड़ने के बजाय विलग करती है, व पश्चिमी संस्कृति के आदर्शों व मूल्यों को पोषित करती है। सम्पूर्ण भारतीय समाज दो पृथक वर्गों में विभाजित हो जाता है। शिक्षित व्यक्ति स्वयं को एक प्रकार से पृथक सामाजिक मूल्यों वाले समाज के रूप में सहजता से अनुकूलन कर लेता है। वह आज भी सामान्य भारतीय से सहजतापूर्वक नहीं जुड़ पाता है। देश की आजादी के बाद इसमें बड़े परिवर्तन हुये हैं। वैश्विक परिस्थितियों व वैज्ञानिक-सामाजिक उपलब्धियों से तादात्म बैठाते हुये शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन हुये हैं। देश की आर्थिक प्रगति के साथ-साथ शिक्षा सुविधाओं का व्यापक प्रसार हुआ है, परन्तु गुणात्मक रूप से शैक्षिक मूल्यों व पश्चिमोन्मुखी दृष्टिकोण परिवर्तित होने के स्थान पर पुष्ट ही अधिक हुए है। शिक्षा का सम्पूर्ण ढाँचा ही विदेशी संस्कृति पर आधारित है। प्राथमिक, उच्च माध्यमिक तक की शिक्षा मैकाले आधारित पाठ्य-व्यवस्था, परीक्षा प्रणाली, प्रशासनिक दृष्टिकोण सभी कुछ तो पाश्चात्य ज्ञान व व्यवस्था व मूल्य व्यवस्था पर आधारित है। व्यावसायिक तकनीकी व प्रोफेशनल पाठ्यक्रमों सहित उच्च शिक्षा का पाश्चात्य व अमरीकी ज्ञान व मूल्य व्यवस्था से अन्तरसंबंध और दृढ़ हुआ है। उसके परे भारतीय संदर्भ में शिक्षा को अभिप्रेरित करने के प्रयास शैशवावस्था तक ही नहीं पहुँच पाये, परिणाम है कि शिक्षा व्यवस्था केवल मात्र डिग्री प्रदान करने वाली संस्था बन कर रह गयी है। स्वयं के लिये श्रेष्ठतम रोजगार (नौकरी) प्राप्त करने और उसमें जीवन के सभी लक्ष्य हासिल करने योग्य बनना ही शिक्षा का उद्देश्य है। समाज को प्रगति, नये ज्ञान के सृजन, भारतीय समाज की समस्याओं को सुलझाने में भारतीय वातावरण के अनुकूल हल निकालने में शिक्षा असमर्थ है।

भारतीय संस्कृति व सभ्यता हजारों-हजार वर्ष प्राचीन है। यहाँ की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था, मूल्य व्यवस्था व संस्कार देश के ही वातावरण के अनुकूल विकसित हुये। यहाँ की संस्कृति के अनुरूप ही ज्ञान-व्यवस्था विकसित हुई है। यह ज्ञान-व्यवस्था वेदों व उपनिषदों के रूप में प्रकट हुई। यह ज्ञान प्रकृति, प्रकृति के सहयोग व सामंजस्य, सामाजिकता से परिपूर्ण वैयक्तिक गुणों व व्यक्ति के विकास, आध्यात्मिक उत्थान तथा उच्च नैतिक आचरण से युक्त मूल्य-व्यवस्था से घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहा। ऐसी वेदोपनिषद् आधारित ज्ञान व्यवस्था से ही भारतीय शिक्षा का उद्भव हुआ। ऐसे ज्ञान से परिपूर्ण शिक्षा व्यवस्था से प्राचीन भारत में भारी सामाजिक, आर्थिक व आध्यात्मिक उन्नति हुई। 'मैं' (व्यक्ति) के स्थान पर 'हम' (समाज), अनुशासन, स्वावलंबन, स्वाभिमान, भौतिक ज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रगति को प्रेरित करने वाली संस्कृति व शिक्षा व्यवस्था विकसित हुई। कालान्तर में राजनीतिक परिस्थितियोंवश यह व्यवस्था धीरे-धीरे कमजोर हुई। मध्यकालीन भारत तक भारतीय शिक्षा व्यवस्था व संस्कृति भारी झंझावतों के बीच भी अक्षुण्य बनी रही है। इसमें आमूल परिवर्तन मैकाले दर्शन व उनकी शिक्षा योजना के क्रियान्वयन से पराभव हुआ। ऐसी शिक्षा में शिक्षित व्यक्ति जन्म से भारतीय परन्तु आचरण, दृष्टिकोण व समाज के स्थान पर व्यक्ति को प्राथमिकता देने वाले व्यक्ति के रूप में आगे आया। देश की स्वदेशी शिक्षा का पराभव हुआ।

देश में आजादी के बाद भी शिक्षा में मौलिक परिवर्तन नहीं हो सका। देश के विभाजन ने भारत को भारतीय ज्ञान व्यवस्था आधारित शिक्षा व्यवस्था को अपनाने में भारी अवरोध उत्पन्न किये। पाश्चात्य देशों की भौतिक उन्नति व शक्ति सम्पन्नता की चकाचौंध

ने भारतीय व्यक्तित्व को उभरने ही नहीं दिया। विभाजन से धार्मिक-आधार पर राजनीतिक व्यवस्था के उभरने तथा वोट बैंक की राजनीति, से उत्पन्न शक्ति सन्तुलन से तथाकथित धर्म निरपेक्षता के एक प्रकार के पवित्र सामाजिक व राजनीतिक मूल्य बनने से भारतीय संस्कृति व ज्ञान व्यवस्था का तिरस्कार आधुनिकता व प्रगतिशीलता का मापदण्ड बन गया। आज जहाँ विश्व के अग्रणी शिक्षण संस्थायें अनवरत रूप से भारतीय वेदोपनिषद आधारित ज्ञान व्यवस्था के आधार शोध व अध्ययन में व्यस्त हैं, और भौतिकता से उत्पन्न समस्याओं और आपदाओं से निवारण हेतु भारतीय ज्ञान का उपयोग कर रही हैं, वहाँ देश में तथाकथित धर्मनिरपेक्षतावादी वेद, उपनिषद का अध्ययन तो दूर पोंगापंथी, प्रतिक्रियावादी दक्षिणपंथी देश व समाज को पीछे की ओर ले जाने वाला जैसे विशेषण से संबोधित कर उपहास का पात्र बनाने से नहीं चूकते हैं। सामान्य जन भी अपर्याप्त जानकारी व अनुसंधान के अभाव में इसे शिक्षा व्यवस्था में शामिल करने पर स्पष्ट मत-मानस नहीं बना पाते हैं। वास्तव में आज आवश्यकता इस बात की है, भारत की शिक्षा में पश्चिम के प्रयोग सिद्ध सत्यों को अपनाने के साथ भारत प्राचीन अनुभव सिद्ध सत्यों को आधार रूप में स्वीकार किया जाय। इस संदर्भ में 'स्वदेशी' के अर्थ को स्पष्टत: समझना आवश्यक है। शिक्षा में स्वदेशी का अभिप्राय: भारतीय चिन्तन-मनन व भारतीय ज्ञान पद्धति से है। भारतीय ज्ञान पद्धति वह है जो वेदों से प्राप्त ज्ञान पर आधारित है। वेदों में निहित ज्ञान अनुभव सिद्ध सत्य है। यह ज्ञान भारतीय संस्कृति के रूप में प्रकट होता है। स्वामी विवेकानन्द जी 'स्वाभिमान' का विचार स्वदेशी की धारणा पर आधारित है। वास्तव में स्वाभिमान का दूसरा आधार स्वयं को पहचानना है। अपने विगत को पहचानना ही संस्कृति है। 'स्वदेशी' की अवधारणा स्वयं में एक संस्कृति व संस्कार है। 'स्वदेशी' की धारणा जीवन के सभी पक्षों में मार्गदर्शक का कार्य करती है। विश्व में सभी समाज अपनी जड़ों की खोज में जुटे रहते हैं। देश की शिक्षा प्रणाली भी ऐसी होनी चाहिये जो अपनी जड़ों को पहचान कर 'स्वाभिमान' को प्रेरित करने वाली हो। देश के स्वाभिमान एवं सांस्कृतिक आचरण से युक्त व्यक्तित्व व व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं को वास्तविकता में बदलने का गुण स्वदेशी शिक्षा व्यवस्था से ही संभव है। यह ही स्वदेशी भारतीय व्यक्तित्व के निर्माण का आधार है। शिक्षा में स्वदेशी की अवधारणा को पहचानने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि जब भारतीय शिक्षा में आमूल परिवर्तन की बात की जाय, तो परिवर्तन पूर्व की सतही न हो वरन स्वदेशी की अवधारणा को सामने रखकर ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति बने। स्वदेशी के अनुरूप ही शिक्षा व्यवस्था पुनर्गठित हो पाठ्यचर्या का निर्धारण, छात्र मूल्यांकन व्यवस्था परिवर्तित हो। शैक्षिक प्रशासन में बदलाव लाया जाय व शिक्षा के प्रति समाज, व्यक्ति व राजनीतिक व्यवस्था का दृष्टिकोण बदले।

भारत की शिक्षा व्यवस्था में स्वदेशी की अवधारणा को सम्मिलित करना शैक्षिक सुधारों का एक महत्वपूर्ण अंग है। अब तक भारतीय ज्ञान व्यवस्था अनुभव सिद्ध सत्यों पर ही मुख्यत: निर्भर रही है। मानव की प्रगति में अनुभव सिद्ध सत्य के अतिरिक्त प्रयोग सिद्ध ज्ञान का 20वीं सदी में व्यापक प्रसार हुआ है। भौतिक जगत में मानव ने आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। भारतीय ज्ञान व्यवस्था को भी इस प्रगति से संबद्ध करना होगा। 21वीं सदी प्रयोग सिद्ध सत्यों की खोज में सफलताओं से ज्ञान को विस्फोटक विस्तार प्राप्त हो रहा है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था को इस विस्फोटक गति के बढ़ते ज्ञान के भण्डार से न केवल भारतीय शिक्षा को जोड़े रखना आवश्यक है, वरन् इस ज्ञान की विस्फोटक वृद्धि में योग देने में भारतीय शिक्षा व्यवस्था स्वदेशी के साथ-साथ सफल भागीदार बनाना आवश्यक है। इस ध्येय प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि भारतीय छात्रों में समझ के स्तर (Learning Level) में गुणात्मक वृद्धि हो। इसके लिये शिक्षा में समस्त शिक्षण अध्ययन-अध्यापन मातृ-भाषा में ही हो। मातृ भाषा में अध्ययन अध्यापन स्वदेशी शिक्षा का मूलाधार है। विदेशी भाषा में चाहे कितने ही पारंगत क्यों न हो जाय, सोचने की स्वाभाविक प्रक्रिया तो जिस सामाजिक-भौतिक परिवेश में व्यक्ति रहता है, उसमें ही पूर्ण होती है। इसी सोच व समझ से नये प्रयोग सिद्ध व अनुभव सिद्ध ज्ञान का सृजन संभव हो सकता है। स्वाभाविक ही है कि शैक्षिक व्यवस्था में सुधार व स्वदेशी की अवधारणा समावेश मातृ-भाषा में अध्ययन-अध्यापन से संभव है।

आज का समाज वैश्विक समाज का एक अंग मात्र है। विश्व के सभी समाजों व देशों में अनेकानेक प्रकार के नये ज्ञान का सृजन हो रहा है। एक ज्ञान आधारित समाज के निर्माण के लिये स्वयं ज्ञान के सृजन में समर्थ न हो पाये, तो वह दूसरे समाजों द्वारा नये ज्ञान के सृजन को अंगीकार कर सकता है, इसके लिये उस समाज की भाषा व शिक्षा व्यवस्था को अपनाना आवश्यक नहीं है। आज की सूचना क्रांति के युग ने भाषाओं में अनुवाद को अत्यधिक सरल बना दिया है। भारत की स्वदेशी आधारित शिक्षा व्यवस्था में बडे पैमाने पर विज्ञान, साहित्य व अन्य ज्ञान का प्रसार अनुवाद की वृहत स्तर पर व्यवस्था व अनुकरण से संपन्न हो सकता है। गैर अंग्रेजी भाषी अधिकांश देशों ने अपना ज्ञान दूसरों को देने व दूसरों का नव सृजित ज्ञान आत्मसात करने में अनुवाद का सहारा लिया है। भारतीय भाषाओं व हिन्दी में नव सृजित ज्ञान को प्रसारित करने में स्वदेशी की भावना में अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। कोई भी देश या समाज तब तक ही जीवन्त व प्रगतिशील रह सकता है, जब तक कि उसकी शिक्षा व्यवस्था अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ शोध व अनुसंधान पर भी महत्वपूर्ण रूप से ध्यान केन्द्रित करती है। सामाजिक व भौतिक उन्नति की समस्याओं का समाधान समाज के सांस्कृतिक व भौतिक परिवेश में ही चिन्तन-मनन करने की व्यवस्था में निहित है। शिक्षा में स्वदेशी की अवधारणा का उपयोग नये शोध व अनुसंधान में व्यापक रूप से किया जा सकता है। ये सभी कतिपय वे पहलू हैं, जिन्हें शिक्षा में स्वदेशी के रूप में कार्यान्वित किया जा सकता है। इससे न केवल भारतीय शिक्षा में आमूल परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होगा वरन् स्वदेशी पर आधारित भारतीय व्यक्तित्व का राष्ट्रीय स्वरूप निखरेगा। ❑

शिक्षा और स्वदेशी

कंकड़-पत्थरों वाली जमीन। जड़ और अचेत जमीन। किन्तु जब हम उसे अपने हृदय के अन्दर निवास करने वाले मातृभाव से जोड़ते हैं, तो फिर वह 'मातृभूमि' बनती है। फिर उसका सारा जड़त्व, अचेतनत्व समाप्त हो जाता है। उस का कण कण हमारे लिये पवित्र बन जाता है। और बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसा भावकवि उसे 'त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणी' याने तुम दश आयुध धारण करने वाली माँ दुर्गा हो, 'कमला कमलदलविहारिणी'। कमलदलों में विहार करने वाली लक्ष्मी हो, 'वाणी विद्यादायिनी'। विद्या देने वाली भगवती सरस्वती हो, इस प्रकार उसकी महत्ता को गौरवान्वित करता है। एक बार हमने अपनी भूमि को, अपने देश को मातृभूमि मान लिया कि फिर हमारा सारा भावविश्व ही परिवर्तित हो जाता है।

❑ **मा. गो. वैद्य**

शिक्षा का अर्थ और प्रयोजन केवल जानकारी (information) देना नहीं है। शिक्षा का प्रयोजन मानव पर अच्छे संस्कार करना है। 'अच्छे संस्कार' यह शब्दावली भी एक दृष्टि से गलत है। क्योंकि संस्कार अच्छे ही होते हैं।

प्रकृति, विकृति और संस्कृति

मनुष्यों में तीन प्रकार के भाव उत्पन्न हो सकते हैं। एक भाव यह है कि हम जैसे हैं, वैसे ही रहेंगे। इस भाव का नाम है- प्रकृति। मानव भी एक प्राणी ही है और मानव से भिन्न प्राणी, प्रकृति से ही चलते हैं। इस भाव को व्यक्त करने वाला एक सुभाषित है.

आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च
समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्॥

अर्थ है, आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये बातें पशु और मानव में समान हैं। किन्तु मानव में इस प्रकृति के ऊपर उठने की क्षमता भी है। पशुओं में यह क्षमता नहीं रहती। यह जो प्रकृति से ऊपर उठने की, उन्नति की, विकास की अवस्था है, उसे ही संस्कृति कहते हैं। पशुओं में एक और अच्छी बात भी है। उन में विकृति नहीं आती। मनुष्यों में संस्कृति भी आ सकती है तथा विकृति भी आ सकती है। भूख लगी है तो खाना चाहिये यह प्रकृति है। किन्तु भूख लगने पर भी दूसरे को भूखा देखकर मनुष्य अपने पास का अन्न उसे दे सकता है यह संस्कृति है और दूसरे को खाते देखकर उस के पास का अन्न छीनकर हड़पना यह विकृति है।

एक उदाहरण

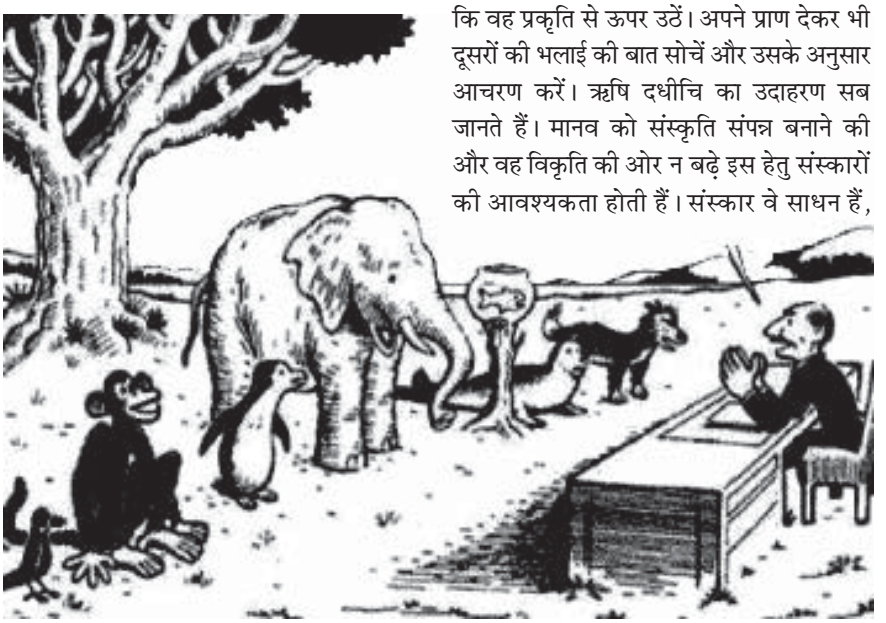

एक उदाहरण देता हूँ। मान लीजिये कि सामने सुंदर हरी घास पड़ी है। दौ बैल, जिनमें एक तगड़ा है और दूसरा दुबला है, एक ही समय उस घास के पास आ पहुँचे हैं। तो तगड़ा बैल दुबले से यह नहीं कहेगा कि तुम भूखे दीखते हो, तुम पहले खा लो। मैं बाद में खाऊँगा। पेट में भूख है तो वह तगड़ा बैल उस घास पर टूट पड़ेगा और दुबला बैल नजदीक आता है, तो उसे अपने सींगों से दूर धकेलने की कोशिश करेगा, यह प्रकृति है, मनुष्य स्वयं भूखा रहकर भी दूसरों को खिला सकता है। यह संस्कृति है। किन्तु पशुओं में विकृति भी नहीं आती। यदि पेट भरने के बाद घास बची, तो बैल उसकी गठरी बाँध कर नहीं ले जायेगा। मनुष्य का कोई भरोसा नहीं है। अत: मनुष्यों पर संस्कार करने पड़ते हैं कि वह प्रकृति से ऊपर उठें। अपने प्राण देकर भी दूसरों की भलाई की बात सोचें और उसके अनुसार आचरण करें। ऋषि दधीचि का उदाहरण सब जानते हैं। मानव को संस्कृति संपन्न बनाने की और वह विकृति की ओर न बढ़े इस हेतु संस्कारों की आवश्यकता होती हैं। संस्कार वे साधन हैं,

विधाएँ हैं जिन से संस्कृति उत्पन्न होती है।

शिक्षा- संस्कारप्रदायी व्यवस्था

इस प्रकार मनुष्य को संस्कार देने वाली जो व्यवस्थाएँ समाज में खड़ी की जाती हैं, उनमें से एक व्यवस्था शिक्षा है। शिक्षा का प्रथम स्थान तो अपना घर, अपना परिवार ही होता है, किन्तु वहाँ पर्याप्त शिक्षा मिलेगी ही यह निश्चिति नहीं है। अत: उस व्यक्ति को ऐसे वातावरण में लाने की आवश्यकता रहती है, जो उसके मन को अधिक व्यापक, अधिक विकसित, अधिक स्वार्थ निरपेक्ष बनायेगा। ऐसा वातावरण बनाना, यह शिक्षा संस्थाओं का दायित्व है।

'मातृभूमि' का अर्थ

मानव कितना व्यापक बन सकता है इसकी कोई सीमा नहीं है। मराठी में 'तुका झाला आकाशाएवढा' ऐसा एक वचन है। उसका अर्थ है संत तुकाराम आकाश जैसे व्यापक बने थे। हमने अपने को अपने परिवार के साथ जोड़ना, यह व्यापकता की पहली सीढ़ी है। यह व्यक्ति धर्म है, याने व्यक्ति के वे कर्तव्य जो उसे परिवार से जोड़ते हैं। अपने देश के साथ, अपने को जोड़ना यह दूसरी यानी पहली सीढ़ी से अधिक उन्नत सीढ़ी है। कैसे जोड़ सकते हैं हम अपने को दूसरों के साथ? अर्थात् आदरपूर्वक, सम्मानपूर्वक। यह बताया जाता है कि मातृदेवो भव। अर्थ है कि माता को अपना भगवान मानो। इसी तरह से आदेश है कि पितृदेवो भव। अतिथि देवो भव। स्वदेश को भी हमने इसी प्रकार से आदर और सम्मान से, अपने साथ जोड़ना चाहिये। मानव जीवन में सब से सम्माननीय, आदरणीय वस्तु है, अपनी माता। देश याने एक प्रकार से भूमि ही होती है, कंकड़-पत्थरों वाली जमीन। जड़ और अचेत जमीन। किन्तु जब हम उसे अपने हृदय के अन्दर निवास करने वाले मातृभाव से जोड़ते हैं, तो फिर वह 'मातृभूमि' बनती है। फिर उसका सारा जड़त्व, अचेतनत्व समाप्त हो जाता है। उस का कण कण हमारे लिये पवित्र बन जाता है। और बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसा भावकवि उसे 'त्वं

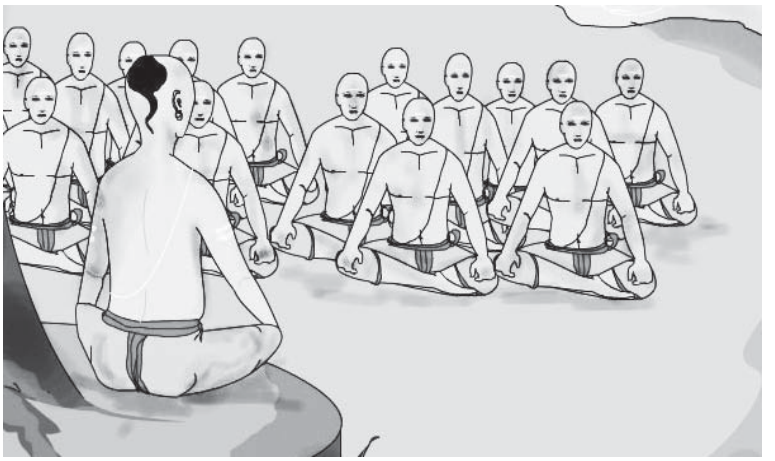

हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी' याने तुम दश आयुध धारण करने वाली माँ दुर्गा हो, 'कमला कमलदलविहारिणी'। कमलदलों में विहार करने वाली लक्ष्मी हो, 'वाणी विद्यादायिनी'। विद्या देने वाली भगवती सरस्वती हो, इस प्रकार उसकी महत्ता को गौरवान्वित करता है। एक बार हमने अपनी भूमि को, अपने देश को मातृभूमि मान लिया कि फिर हमारा सारा भावविश्व ही परिवर्तित हो जाता है। वह उदात्त और विस्तारित हो जाता है। फिर इस प्रकार की भावना अन्त:करण में रखने वाले जो भी हैं, वे सारे हमें अपने बन्धु लगते हैं। हमारे मन में बन्धुभाव जाग उठता है। और यह बन्धुभाव हमारे सारे जीवन को, व्यवहार को और आचरण को आलोकित करता है।

हमारा पूर्व गौरव

फिर जो जो स्वदेशी है, वे सब चीजें हम को अपनी, अपने से जुड़ी हुई लगती है। फिर स्वदेश की भूमि, यह निष्प्राण भूखण्ड नहीं होता, जिसका बँटवारा भाई आपस में करें। किसी जन्मदात्री माता को काटकर भाईयों में बँटवारा होता है क्या? दुर्भाग्य से हमारे हाथों से यह पाप हुआ है। स्वदेश याने फिर उस भूमि पर रहने वाले सब लोग हो जाते हैं। फिर मन में भाव उठता है कि मैं स्वदेश को बड़ा करूंगा। आत्मनिर्भर करूंगा। तो अर्थ होता है मैं अपने सब देशबन्धुओं की भलाई करूंगा। हमारे जीवन के लिये जो जो आवश्यक वस्तुएँ हैं, उन्हें हम अपने यहाँ बनायेंगे। विदेशों से आयात नहीं करेंगे। कोई हमारे देश पर आक्रमण करता है, तो हम अपने पराक्रम से उसे परास्त करेंगे। इस प्रकार स्वदेशी की भावना से हमारा अन्त:करण जब ओतप्रोत होता है, तब वह देश विश्व में श्रेष्ठ बनता है। जगद्गुरु बनता है। इस प्रकार श्रेष्ठत्व पूर्व काल में हमने प्राप्त किया था। तभी तो कहा गया था कि

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन: ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरत् पृथिव्यां सर्वमानवा: ॥

अर्थ है कि इस अपने देश में उत्पन्न हुये श्रेष्ठ जनों के पास आकर, दुनिया के सारे मानव अपना चरित्र, यानी अपना आचरण कैसा हो यह सीखेंगे।

दुर्भाग्य से हमने अपनी मातृभूमि का यह गौरव खो दिया है। उसे फिर से जगद्गुरु के अधिष्ठान पर प्रस्थापित करना है। उस हेतु उपयुक्त संस्कार देने का महान् कार्य अपनी शिक्षा संस्थाओं को करना चाहिये।

इस हेतु शिक्षा प्रणाली, पाठ्य सामग्री, शिक्षा संचालन आदि शिक्षा सम्बन्धी सभी बातों का पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। हमको परानुवर्तन त्यागना चाहिये। अपनी जो अस्मिता, हजारों वर्षों से बनी है, उस का सहारा लेकर हमें एक नयी, पूर्णत: स्वदेशी व्यवस्था निर्माण करनी है। शिक्षा का स्वदेशी से यानी स्वदेशी भावना से अन्तरंग सम्बन्ध है। ❑

(दैनिक तरुण भारत के पूर्व सम्पादक,
एवं रा.स्व.संघ के पूर्व प्रवक्ता)

शिक्षा के स्तर में सुधार आवश्यक

❑ डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा

किसी भी देश व समाज का तकनीकी, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक विकास, वहां की शिक्षा के समानुपात में ही होता है - न उससे कम व न ही उससे अधिक। इसलिए हमारे विकास की गति व दिशा, देश के 13 लाख विद्यालयों में अध्ययनरत 23 करोड़ विद्यालयीन छात्रों एवं 700 विश्वविद्यालयों व तत्सम डिग्री प्रदाता संस्थानों सहित 45000 महाविद्यालयों में अध्ययनरत 2 करोड़ महाविद्यालयीन छात्रों की शिक्षा-दीक्षा पर निर्भर करेगी। विगत वर्षों में शासकीय संस्थानों में शिक्षकों की कमी, भवन व अन्य अवसंरचनाओं की अपर्याप्तता, आधुनिक उपकरणों के अभाव के कारण वहाँ अध्ययनरत छात्रों की नियोजन योग्यता (employabilty) में ह्रास को देखते हुये, आज आधे से अधिक छात्र, उच्च लागत युक्त स्व वित्तपोषित संस्थानों की ओर ही बढ़ रहे हैं। विद्यालयीन छात्रों के स्तर में सतत् गिरावट के कारण अन्तर्राष्ट्रीय छात्र मूल्यांकन कार्यक्रम (Programe for International Students Assessment (PISA) द्वारा किये जाने वाले 74 देशों के विद्यालयीन छात्रों के स्तर के तुलनात्मक मूल्यांकन में भारतीय छात्रों के निरन्तर नीचे से दूसरे स्थान पर आने से भारत ने उस स्पर्द्धा में भाग लेना ही बन्द कर दिया है। हम आज विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या का निर्माण करते हैं और विश्व का सर्वाधिक विशाल शिक्षण तंत्र हमारे पास होते हुये भी, विश्व के शीर्ष 200-250 विश्वविद्यालय में हमारे कोई विश्वविद्यालय स्थान नहीं बना पा रहा हैं। विद्यालयीन शिक्षा में तो आठवीं कक्षा तक किसी छात्र का अनुत्तीर्ण नहीं करना व 10वीं की बोर्ड की परीक्षा ऐच्छिक कर देने से हाल के वर्षों में आयी गिरावट को रोकने के लिये आज अविलम्ब प्रयत्न आवश्यक है। यू.पी.ए. के कार्यकाल में हुये इन निर्णयों की कांग्रेस के ही सांसद, आस्कर फर्नांडिस की अध्यक्षता वाली संसदीय समिति तक ने पिछले वर्ष इस नीति की आलोचना करते हुये यहाँ तक कह दिया था कि, इससे पूरे देश के विद्यालयों में छात्रों की वाचन क्षमता, भाषा ज्ञान एवं गणितीय योग्यता में अकल्पित व भारी गिरावट आयी है। 'प्रथम' नाम के एक स्वैच्छिक संगठन द्वारा देश के 566 जिलों के 3 से 16 वर्ष की आयु के 6 लाख बच्चों के सर्वेक्षण जिसे तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री पल्लम राजू ने ही जारी किया था, में कहा गया है कि पाँचवी कक्षा में पढ़ने वाले आधे से अधिक छात्र दूसरी कक्षा की पुस्तक का छोटा सा गद्यांश भी नहीं पढ़ पाते हैं एवं साधारण जोड़-बाकी भी नहीं कर पाते हैं। प्रतिवेदन में इस बात पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की गयी है कि, पाँचवी कक्षा के 55.05 प्रतिशत छात्र दूसरी कक्षा की पुस्तक का भी वाचन नही कर पाते हैं। इसी प्रकार पाँचवी कक्षा के 46.5 प्रतिशत छात्र दो अंको की

वस्तुतः, आठवीं तक किसी छात्र को अनुत्तीर्ण करने पर रोक लगा देने से आठवीं तक के छात्रों की, कक्षाओं में 75 प्रतिशत उपस्थिति की अनिवार्यता भी समाप्त हो गयी है। छात्रों के मन पर से अध्ययन का तनाव हटाने के नाम पर किये इन सभी प्रतिगामी परिवर्तनों से अब छात्रों के लिये नियमित विद्यालय जाना व गम्भीरतापूर्वक परीक्षा देने की अनिवार्यता ही समाप्त हो गयी है। इससे महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लेने तक, उनके वांछित शैक्षिक स्तर के विकास का मार्ग ही धूमिल हो गया है। 12वीं बोर्ड के पूर्व की 11 कक्षाओं तक की संचित अध्ययन सम्बन्धी कमजोरी को केवल 12वीं की बोर्ड परीक्षा या 3/4 वर्ष की स्नातक उपाधि के अध्ययन में दूर कर लेना कतई सम्भव नही हैं। ऐसे में कहीं हमारी नई पीढ़ी ऐसी न हो जाये जिसके पास शैक्षिक योग्यता का प्रमाण पत्र तो हो, लेकिन, उसे साधारण सा भी शैक्षिक अभिज्ञान नहीं हो।

संख्याओं को भी घटाने में असमर्थ पाये गये।

इसी प्रकार दसवीं की बोर्ड की परीक्षा को भी ऐच्छिक कर दिये जाने से, अब केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों के छात्रों के लिये, 12वीं कक्षा में पहुँच जाने तक कोई भी मानक परीक्षा देने की अनिवार्यता ही समाप्त हो गयी है। दसवीं में विद्यालय स्तर की परीक्षा का विकल्प चुनने वाले किसी भी छात्र को बारहवी कक्षा में पहुँचने पर ही बोर्ड की परीक्षा देनी व उत्तीर्ण करनी होती है। वस्तुत:, आठवीं तक किसी छात्र को अनुत्तीर्ण करने पर रोक लगा देने से आठवीं तक के छात्रों की, कक्षाओं में 75 प्रतिशत उपस्थिति की अनिवार्यता भी समाप्त हो गयी है। छात्रों के मन पर से अध्ययन का तनाव हटाने के नाम पर किये इन सभी प्रतिगामी परिवर्तनों से अब छात्रों के लिये नियमित विद्यालय जाना व गम्भीरतापूर्वक परीक्षा देने की अनिवार्यता ही समाप्त हो गयी है। इससे महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लेने तक, उनके वांछित शैक्षिक स्तर के विकास का मार्ग ही धूमिल हो गया है। 12वीं बोर्ड के पूर्व की 11 कक्षाओं तक की संचित अध्ययन सम्बन्धी कमजोरी को केवल 12वीं की बोर्ड परीक्षा या 3/4 वर्ष की स्नातक उपाधि के अध्ययन में दूर कर लेना कतई सम्भव नही हैं। ऐसे में कहीं हमारी नई पीढ़ी ऐसी न हो जाये जिसके पास शैक्षिक योग्यता का प्रमाण पत्र तो हो, लेकिन, उसे साधारण सा भी शैक्षिक अभिज्ञान नहीं हो।

कई बहु चर्चित सर्वेक्षणों में भारत के अभियांत्रिकी स्नातकों में से केवल 25 प्रतिशत और कला, विज्ञान व वाणिज्य के स्नातकों में से केवल 10 प्रतिशत ही नियोजन योग्य है। कम्प्यूटर साफ्टवेयर कम्पनियों के संगठन नेसकॉम के अनुसार देश के स्नातकों में से केवल 25 प्रतिशत ही सूचना प्रोद्यौगिकी उद्योगों में नियोजन योग्य हैं। देश के मेट्रोमैन (Metroman) के नाम से ज्ञात ई. श्रीधरन के अनुसार देश के केवल 12 प्रतिशत अभियान्त्रिकी स्नातक सीधे नियोजन के योग्य है। शेष के 64 प्रतिशत स्नातकों को आवश्यक प्रशिक्षण के बाद नियोजन योग्य बनाया जा सकता हैं। लेकिन, बचे हुए 34 प्रतिशत को वांछित प्रशिक्षण देना भी संभव नही है। नेशनल एम्पलॉयबिलिटी रिपोर्ट के अनुसार देश के अभियान्त्रिकी स्नातको में से केवल 17.45 प्रतिशत ही सूचना प्रोद्योगिकी उद्योगों मे नियोजन योग्य हैं, दूसरी ओर सूचना प्रोद्यौगिकी के उत्पादन क्षेत्र में केवल 2.68 प्रतिशत ही नियोजन योग्य है और केवल 9.22 प्रतिशत ही के.पी.ओ.(KPO) क्षेत्र में नियोजन योग्य है।

हाल के जनसांख्यिकीय अनुमानों के अनुसार अमेरिका, जापान, यूरोप, चीन व दक्षिण पूर्व एशिया सहित विश्व के अनेक देशों में वृद्धों के बढ़ते अनुपात के कारण इन देशों में विविध ज्ञान आधारित उद्योगों में नियोजन हेतु युवा जनशक्ति का भारी अभाव हो जाएगा। वस्तुत: इन देशों में वर्ष 2020 तक होने वाली सेवानिवृत्तियों से प्रमुख ज्ञान आधारित क्षेत्रों में नियोजन के लिये लगभग 5 करोड़ 70 लाख लोगों का जनाभाव उत्पन्न हो जाएगा। दूसरी और भारत की आधी जनसंख्या 25 वर्ष से अल्प आयु की होने से इसमे लगभग 4 करोड़ 30 लाख की आपुर्त्ति भारत से होनी है। लेकिन, यदि देश की शिक्षा की गुणवत्ता में यह गिरावट जारी रही तो भारत यह अवसर अपने हाथ से खो देगा।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वस्तुत: संकाय में बड़ी संख्या में रिक्त स्थानों की समस्या, अध्यापन व शोध के बीच प्राथमिकताओं की अस्पष्टता जैसी अनेक समस्याओं के कारण विगत सत्र में तो आई.आई.टी. तक में प्रवेश की प्रथम काउन्सिलिंग में 760 चयनित छात्रों ने प्रवेश ही नहीं लिया और अन्तत: इन संस्थानों में लगभग 300 स्थान रिक्त ही रह गये। छात्रों की संख्या के अनुपात में सकांय सदस्यों की अपर्याप्तता व वांछित अकादमिक वातावरण के अभाव में देश के राज्य- पोषित विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में अनुसंधान, शोध पत्रों के प्रकाशन व अर्न्तराष्ट्रीय पेटेन्ट की संख्या आदि अत्यन्त न्यून होने से देश के विश्वविद्यालय, अर्न्तराष्ट्रीय मानको पर बहुत पीछे रह जाते हैं। हम विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या का निर्माण करते हैं, लेकिन, अर्न्तराष्ट्रीय पेटेन्ट आवेदन में हमारा स्थान विश्व के 15 प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय पेटेण्ट आवेदक देशों में कही नहीं है। अर्न्तराष्ट्रीय शोध प्रकाशनों में भी हमारा अंश मात्र 2.2 प्रतिशत है जो 2002 में भी 2.3 प्रतिशत था। दूसरी ओर अर्न्तराष्ट्रीय शोध प्रकाशनों में चीन का योगदान 2002 में 14 प्रतिशत था जो अब बढ़कर 21 प्रतिशत हो गया है और इसमें प्रथम स्थान अमेरिका का हैं। यहाँ पर यह स्मरणीय है कि, 1980 में भारत शोध प्रकाशन में चीन से आगे था। अर्न्तराष्ट्रीय पेटेण्ट आवेदकों में भी अब चीन प्रथम स्थान पर है। अर्न्तराष्ट्रीय शोध प्रकाशनों में अमेरिका का योगदान 23.3 प्रतिशत है। संकाय की अपर्याप्तता की समस्या शासकीय संस्थानों में गम्भीर है। स्ववित्त पोषित संस्थानों की स्थिति इस दिशा में सन्तोषप्रद है। लेकिन, स्ववित्तपोषित संस्थानों में प्रवेश की समर्थ्य के अभाव को देखते हुये कुछ यूरोपिय देशों की भांति भारत में भी, छात्र जहाँ भी प्रवेश ले उसके शुल्क पुनभरण अनुदान (पूर्ण या आंशिक) के प्रावधान आवश्यक है।

इस स्थिति में परिवर्तन के लिये देश में शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय में वृद्धि आवश्यक है। देश में शिक्षा पर हमारा सार्वजनिक व्यय हमारे सकल घरेलू उत्पाद के 4 प्रतिशत से कम ही रहा है, जबकि, दीर्घकाल से हमारा लक्ष्य 6 प्रतिशत का है। देश की आधी जनसंख्या 25 वर्ष से अल्प आयु की व शिक्षा पाने की आयु वर्ग की हमारी संख्या विश्व में सर्वोच्च होने पर भी सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) के अनुपात में हमारा शिक्षा पर व्यय विश्व के शताधिक देशों से न्यून है। विश्व के 125 देशों का व्यय हमसे अधिक व कुछ का तो उनके जी.डी.पी. के 9 प्रतिशत तक या यत्किंचित उससे भी अधिक है। उच्च शिक्षा में हमारे सार्वजनिक व्यय का प्रतिशत, विगत कई वर्षों के देश के सकल घरेलू उत्पाद के एक प्रतिशत से कम भी रहा है जबकि, विश्व के अधिकांश औद्योगिक देशों में युवा जनसंख्या का स्वल्प अनुपात होने पर भी उच्च शिक्षा पर वे 2.5 प्रतिशत से अधिक व्यय करते हैं। उच्च व तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संस्थानों में उपलब्ध अपेक्षाकृत बेहतर आधारिक रचनाओं व छात्रों की संख्या के अनुपात में संकाय सदस्यों की पर्याप्तता के आलोक में यदि आई.आई.टी. व आई.आई.एम. सहित शासकीय विश्वविद्यालय व महाविद्यालयों की मान्यता के लिए भी आधारिक रचनाओं व संकाय सदस्यों के उचित अनुपात व उसकी पर्याप्तता जैसी अनिवार्य मानक अर्हताओं को नियमित, निष्पक्ष व प्रभावी निरीक्षण व क्रियान्वयन की बाध्यकारिता हो तो स्थिति बेहतर हो सकती है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजी संस्थानों में शिक्षक छात्र अनुपात निर्धारित मानकों के अनुरूप होते हुए भी छात्रों की उनके शुल्क के भुगतान की असमर्थता के कारण स्ववित्त पोषित संस्थाओं में लगभग 40 प्रतिशत स्थान रिक्त हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में देश में शासकीय विश्वविद्यालयों का समुचित वित्त पोषण नहीं हो पाने से छात्रों से विकास शुल्क लेने से लेकर प्रति वर्ष ऊंचे सम्बद्धता शुल्क लेने की प्रेरणा से सम्बद्ध महाविद्यालयों को स्थायी सम्बद्धता प्रदान नहीं करने जैसे अनेक निर्णयों को एक स्वस्थ परम्परा तो नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रकार स्थायी शिक्षकों के अभाव में अतिथि सकांय से स्ववित्त पोषित पाठ्यक्रम चला कर या विविध प्रवेश परीक्षाओं से आय उपार्जित करने जैसी विवशताएँ भी उच्च शिक्षा सम्मुख गम्भीर चुनौति प्रस्तुत कर रही हैं। सीटों की रिक्तता उपरान्त भी उच्च शिक्षा के लिए पात्रता रखने वाले आयु समुह में, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नामाकंन अनुपात आज भी मात्र 18.8 प्रतिशत है। दूसरी ओर चीन में उच्च शिक्षा में सकल नामाकंन अनुपात (Gross enrolment ratio) अपेक्षाकृत उच्च व 35 प्रतिशत है, ब्राजील में 39 प्रतिशत, कनाड़ा में 62 प्रतिशत, इंग्लेंड में 57 प्रतिशत, अर्जेंटिना में 68 प्रतिशत, रूस में 77 प्रतिशत व अमेरिका में 83 प्रतिशत है। सीटो की रिक्तता होते हुये भी शुल्क भुगतान सामर्थ्य के अभाव में न्यून नामांकन स्थिति में कई देशों में व्यवहृत, गैर सरकारी व गैर अनुदानित संस्थानों में प्रवेश लेने वाले प्रतिभा सम्पन्न छात्रों के शुल्क पुनर्भरण जैसी पद्धतियों पर भी आने वाले समय में भारत में भी विचार करना समीचीन हो सकता है। अन्यथा, आज विद्यालयीन शिक्षा के क्षेत्र में अधिकांश स्थानों पर शासकीय विद्यालयों में केवल वे ही छात्र प्रवेश लेते देखे जा रहे हैं, जिनके अभिभावक निजी विद्यालयों का शुल्क वहन करने में समर्थ नहीं हैं। अतएव समुचित छात्रवृत्तियों के माध्यम से शुल्क भुगतान में असमर्थ छात्रों की शुल्क पुनर्भरण जैसी व्यवस्था के माध्यम से ही गुणवत्ता से समझौता किये बिना सकल नामांकन अनुपात बेहतर किया जा सकता है।

इन समस्याओं के समाधान हेतु शिक्षा में विदेशी शिक्षा संस्थानों के प्रवेश के प्रस्तावित सुधार तो इन समस्याओं के समाधान के स्थान पर उन्हें और विकट बना देंगे। वस्तुतः किसी भी देश व समाज हेतु केवल विषय ज्ञान सम्पेषण ही पर्याप्त नहीं, वांछित मानवीय पारिवारिक, सांस्कृतिक व सामाजिक जीवन मूल्य, दायित्व बोध नैतिकता एवं राष्ट्र गौरव के प्रति संवेदना का विकास भी परम आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, वैश्विक प्रतिमानों के अनुरूप देश की वांछित उन्नति के लिये शिक्षण के साथ-साथ आर्थिक राष्ट्रनिष्ठा जिसे फ्राँस आदि देशों में आर्थिक राष्ट्रवाद के रूप में देखा जा रहा है एवं तकनीकी राष्ट्रनिष्ठा, जिसे चीन के सन्दर्भ में टेक्नो-नेशनलिज्म कहा जा रहा है, जैसे सामयिक ध्येय पूर्ति के मानकों पर भी आज शिक्षा के माध्यम से बल देना आवश्यक है। ऐसा होने पर ही भारत विकसित देशों की अग्रपंक्ति में रह कर विश्व मानवता को शाश्वत जीवन मूल्यों से अनुप्राणित कर, एक समरस व एकात्म समाज निर्माण की दिशा में अग्रसर हो सकेगा। ❑

(कुलपति, पेसिफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.), आर्थिक-सामाजिक विश्लेषक, अ.भा. सहसंयोजक-स्वदेशी जागरण मंच)

स्वदेशी भाषा और शिक्षा

❑ बजरंगी सिंह

यह सर्वविदित है कि व्यक्ति ज्ञान की परम्परा और अपने समकालीन लोगों के अनुभवों से भी बहुत कुछ सीखता है। एक सीमा तक ही बालक की शिक्षा में उसकी स्वतंत्रता काम करती है। इस विराट विश्व का अधिकांश ज्ञान और मानव जाति के असंख्य अनुभव भी बालक की शिक्षा में अत्यधिक योगदान करते हैं। इसी परम्परा से मुख्य समाज की एक संस्कृति विकसित होती है। इस संस्कृति का संरक्षण जातीय साहित्य करता है जिसकी अभिव्यक्ति भाषा में होती है। अत: स्वभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि बालक को किस भाषा में संस्कार और शिक्षा दी जाये।

विदेशी भाषा कभी विद्यार्थी को वे संस्कार नहीं दे सकती है, जो उसे अपनी सामाजिक सांस्कृतिक परम्परा से मिलते हैं। सब जानते हैं कि संस्कारों, अनुभवों एवं विचारों की यह पूंजी बालक को ही नहीं वरन युवाओं को भी अपने देश के साहित्य और संस्कृति से ही मिल सकती है, जिसके लिए उसकी अपनी भाषा ही सक्षम हो सकती है। शिक्षा नीति का देश की भाषा और वाङ्मय परम्परा से गहरा सम्बन्ध है। किसी भी प्रकार का ज्ञान विद्यार्थी अर्जित करे, किन्तु अपने देश, समाज आदि की परम्परा से असंबद्ध नहीं होना चाहिए। अत: इस कार्य के लिए हर विद्यार्थी को आरम्भ से ही नैतिक शिक्षा का बोध करवाना चाहिए।

वस्तुत: शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य व्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता है जो उसके जीवन में पूर्णता की अनुभूति जगा सबके बीच समानता लाए, व्यक्तिगत उत्कृष्टता को बढ़ावा दे, व्यक्तिगत और सामूहिक आत्मनिर्भरता लाए तथा राष्ट्रीय एकता पर बल दे। शिक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है। अत: इसको ऐसा होना चाहिए कि हमारे अतीत के सौंदर्य को प्रकट कर हमारे वर्तमान को सर्वोत्कृष्ट बनाएं। हम अपनी स्वभाषा को भुलाकर अपने जीवन को अंग्रेजी भाषा के शब्दजाल में जितना उलझाएंगे, उतना ही अधिक हमारा विभिन्न क्षेत्रों में नैतिक पतन होगा।

यह कैसी विडंबना है कि एक ओर इस देश में लाखों बच्चे हैं, जो अक्षर ज्ञान को तरस रहे हैं तो दूसरी ओर वे बेचारे बच्चे भी बड़ी संख्या में हैं जो होश संभालने से पहले ही ज्ञान का बोझ ढोने को शापित है। विशेषज्ञों के शोर शराबे के बावजूद कि 6 साल तक बच्चे को सिर्फ वही ज्ञान दिया जाना चाहिए जो उसकी कल्पनाशक्ति के विकास में सहायक हो, उसकी शिक्षा, उसकी मातृभाषा में ही होनी चाहिए। उसके साथ इससे पहले पढ़ाई की

विशेषज्ञों के शोर शराबे के बावजूद कि 6 साल तक बच्चे को सिर्फ वही ज्ञान दिया जाना चाहिए जो उसकी कल्पनाशक्ति के विकास में सहायक हो, उसकी शिक्षा, उसकी मातृभाषा में ही होनी चाहिए। उसके साथ इससे पहले पढ़ाई की जोर जबरदस्ती करने से उसका विकास अवरुद्ध होता है। उसमें तरह-तरह के मनोविकार उपजते हैं। आज जगह-जगह नर्सरी अंग्रेजी माध्यम के स्कूल उभर आये हैं जो ठोक पीटकर जानी, जानी को पापा गाने वाले और ए, बी, सी, डी और वन, टू, थ्री, फोर बिना जाने रटने वाले बच्चों की फसल तैयार कर रहे हैं। यह बेमौसम की सारी तैयारी इन गरीबों को उन नामी स्कूलों में ठूसने के लिए है जिनमें प्रवेश के लिए भारी मारामारी है और जिनमें घुसकर इनका जीवन संवरना है। लिहाजा इनके हिस्से में खेलकूद के बदले यह तोतारटंत ही आयी है। महानगरों की देखा देखी यह फैशन शहरों से उतरता हुआ कस्बों और गांवों में भी पहुंच चुका है।

जोर जबरदस्ती करने से उसका विकास अवरुद्ध होता है। उसमें तरह-तरह के मनोविकार उपजते हैं। आज जगह-जगह नर्सरी अंग्रेजी माध्यम के स्कूल उभर आये हैं जो ठोक पीटकर जानी, जानी को पापा गाने वाले और ए, बी, सी, डी और वन, टू, थ्री, फोर बिना जाने रटने वाले बच्चों की फसल तैयार कर रहे हैं। यह बेमौसम की सारी तैयारी इन गरीबों को उन नामी स्कूलों में ठूसने के लिए है जिनमें प्रवेश के लिए भारी मारामारी है और जिनमें घुसकर इनका जीवन संवरना है। लिहाजा इनके हिस्से में खेलकूद के बदले यह तोतारटंत ही आयी है। महानगरों की देखादेखी यह फैशन शहरों से उतरता हुआ कस्बों और गांवों में भी पहुंच चुका है। बच्चों को छोटी से छोटी उम्र में अल्फाबेट और नर्सरी पोयम्स में महारत हासिल कराने की जैसे होड़ सी लग गयी है। वह कुछ सीख रहा है इसे जानने की फुर्सत या जरूरत भी किसी को नहीं है। इन सबके बावजूद बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाने का भूत लोगों में इस कदर सवार हो चुका है कि बच्चा तीन वर्ष का हुआ नहीं कि उसे स्कूल में डाल दिया गया है लेकिन इसका दूरगामी परिणाम यह हो रहा है कि बच्चे को न अपनी भाषा का सही ज्ञान हो पाता है और न ही अंग्रेजी भाषा में वह पारंगत हो पाता है। आज लोगों में यह एक धारणा बन चुकी है कि बिना अंग्रेजी पढ़े न तरक्की हो सकती है और न ही समाज में सम्मान मिल सकता है। इस धारणा का शिकार आज सबसे अधिक समाज का मध्यम वर्ग हुआ है। परिणाम यह हो रहा है कि छात्रों में निकम्मेपन और अनुशासनहीनता बढ़ती जा रही है और छात्र स्कूल से निकलने के बाद न घर का रह जाता है और न ही घाट का। परिणाम यह हो रहा है कि देश में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है, जो युवकों में निराशा, कुंठा और हताशा पैदा कर रही है। इससे बचने के लिए हमें अपने देश की शिक्षा नीति को नये सिरे से बदलना होगा। भाषा की अनिवार्यता भले न हो किन्तु स्वदेशी भाषा और ज्ञान ही हमारे भविष्य को संवारने में कारगर साबित हो सकता है।

दुर्भाग्य रहा कि हमारे कतिपय शिक्षाविदों ने ऐसी शिक्षा व्यवस्था विकसित की जो युवक को उसके वातावरण से दूर करती है। उसे अपनी निजी भाषा संस्कृति और परम्पराओं से पूरी तरह काट दिया है। दुर्भाग्य है कि हमारे देश की शिक्षा एक ऐसे सर्वांगीण आदर्श से कोसों दूर है जो जीवन तथा परिवेश दोनों से पूरी तौर पर कटी हुई है। हम आज उस मायाजाल में फँसते जा रहे हैं जो हमारे विकास को अवरुद्ध करता है। जबकि पाश्चात्य देशों हमारी मनुष्य में अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति की शिक्षा की परिभाषा को बहुत अंश में अंगीकार कर चुके हैं। हम हैं कि उससे दूर होते जा रहे हैं।

हमारे देश की शिक्षा, विद्यार्थी के विकास के महत्वपूर्ण आयामों को स्पर्श नहीं करती। केवल बुद्धि का विकास करना ही इसका लक्ष्य है। इसने आज हमें एक ऐसे मुकाम पर पहुंचा दिया है जहां से आगे का रास्ता बंद हो जाता है। यह कितनी विचित्र बात है कि 16 वर्षों का शैक्षणिक जीवन बिताने के बाद भारतीयता के प्रति अपना सारा विश्वास खोकर और जीवन संग्राम के लिए उपयोगी कोई उपलब्धि किये बिना ही अधिकांश युवक विश्वविद्यालय से बाहर निकलते हैं। हमारे यहां दी जाने वाली बौद्धिक शिक्षा का स्तर भी काफी नीचा है। हमारे विद्यालय अब भी उन्हीं अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक और यहां तक की हानिकारक पद्धतियों से चिपके हुए हैं।

आज हम एक सांस्कृतिक विध्वंस के कगार पर खड़े हैं। विश्व के उन्नत देशों की भौतिक समृद्धि ने हमारी आंखें चौंधिया दी है और हम अपनी सांस्कृतिक आधारभूमि से बहक रहे हैं। उन लोगों की सभ्यता धन तथा सत्ता के प्राथमिक सिद्धांतों पर आधारित है। अहमिक ही उनके व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय जीवन का मूलमंत्र है। आज हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली एक ऐसी ही संस्कृति पर आधारित है। अतएव इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि आज शिक्षित भारत आधुनिक सभ्यता के सम्मोहन जाल में पड़कर अपना सब कुछ भूल बैठा है। विदेशी भाषा, रहन-सहन, वेशभूषा तथा शिक्षा अपनाने से कोई परहेज नहीं है। ❑

(स्वतंत्र लेखक हैं)

स्वदेशी शिक्षा के प्रथम पुजारी राजनारायण बसु

❑ विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

राजनारायण बसु ने सर्वप्रथम कार्य शिक्षा को रुचिकर बनाने के लिए सभी प्रकार के शारीरिक दण्ड समाप्त कर विद्यार्थियों व शिक्षकों के मध्य मित्रता का वातावरण उत्पन्न किया। राजनारायण बसु रटना व परीक्षा में उगल आने वाली शिक्षा के विरोधी थे,अत: उन्होंने शिक्षकों व बच्चों के बीच संवाद की शिक्षा पर जोर दिया। राजनारायण बसु बच्चों को संबोधित करते समय मुहावरों, चुटकलों आदि का प्रयोग कर वार्ता को इतना रोचक बना देते थे कि कक्षा का सबसे कमजोर विद्यार्थी भी उसमें रुचि लेने लगता था। बसु बच्चों में जिज्ञासा उत्पन्न करने वाली शिक्षा के पक्षपाती थे ताकि बच्चे प्रश्न पूछ कर विषय के मूलभूत आधार को मजबूत कर सके। राजनारायण बसु मानसिक क्षमता बढ़ाने में शारीरिक क्षमता के योगदान को स्वीकारते थे।

भारत, जहाँ मानव संस्कृति का उदय हुआ, जहाँ मानव ने सबसे पहले लिखना पढ़ना सीखा, जहाँ सर्वप्रथम नालन्दा व तक्षशिला जैसे महान शिक्षा संस्थान विकसित हुए, उसी देश की सरकार एक नया शिक्षा आयोग गठित करने जा रही है क्योंकि देश की स्वतन्त्रता के 67 वर्ष बाद भी देश में देशहित की शिक्षा व्यवस्था कायम नहीं हो पाई है। मैकाले ने देश की स्वदेशी शिक्षा प्रणाली को नष्ट कर, विदेशी शासन के हित की शिक्षा नीति का बीजारोपण भारत में किया था। मैकाले द्वारा लगाई जा रही विदेशी शिक्षा की पौध के विषैले प्रभाव को भांप कर उसे उखाड़ फैंकने तथा उसके स्थान पर स्वदेशी शिक्षा की वल्लरी पनपाने का इतिहास बहुत पुराना है। स्वदेशी शिक्षा को पनपाने के प्रारम्भिक प्रयास को जानने का प्रयास करने पर राजनारायण बसु का नाम उभर कर आता है। महर्षि अरविन्द के नाना तथा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शिक्षक राजनारायण बसु को भारत में राष्ट्रीय भावना का पितामह माना जाता है।

राजनारायण बसु का जन्म पश्चिम बंगाल के चौबीस परगना जिले के बोरहाल ग्राम में हुआ था। राजनारायण के पिता नंदकिशोर बसु राजा राममोहन राय के शिष्य थे तथा बाद में उनके सचिव के रूप में भी कार्य किया था। राजनारायण बचपन से ही पढ़ने में होशियार थे अत: इन्हें अध्ययन हेतु कोलकाता ले आया गया था। राजनारायण ने 14 वर्ष की उम्र तक कोलकाता के हेयर स्कूल में अध्ययन किया। स्वास्थ्य सही नहीं रहने के कारण इन्हें औपचारिक उच्च अध्ययन से दूर हो जाना पड़ा था। कोलकाता में राजनारायण के शिक्षक उनकी बुद्धिमता व प्रवीणता के प्रसंशक रहे। राजनारायण बसु बंगाली, संस्कृत, अंग्रेजी व अरबी के विद्वान थे।

राजनारायण बसु बालपन में ही राष्ट्रीयता उत्पन्न करने के पक्ष में थे इसी कारण उन्होंने आजीविका के रूप में शिक्षक का व्यवसाय चुना था। बच्चों को प्रेमपूर्वक सिखाना बसु के जीवन का सिद्धान्त था। भारत के लिए प्रथम नोबल पुरस्कार लाने वाले रवीन्द्रनाथ ठाकुर को राजनारायण बसु कुछ समय घर पर पढ़ाया था। उन्हीं दिनों देवेन्द्रनाथ ठाकुर के आग्रह व सहयोग से तीन वर्ष के परिश्रम से उपनिषदों का सर्वप्रथम अंग्रेजी अनुवाद राजनारायण बसु ने किया था। कुछ समय विद्या सागर संस्कृत कॉलेज में अंग्रेजी के शिक्षक रहने के बाद राजनारायण बसु मिदनापुर के जिला स्कूल में प्रधानाध्यापक बन गए। जल्दी ही वह विद्यालय महाविद्यालय में क्रमोन्त हो गया था। राजनारायण बसु के पदभार ग्रहण करने से पूर्व उस पद पर एक अंग्रेज मिस्टर सिंक्लेयर प्रधानाध्यापक का कार्य कर रहे थे। मिस्टर सिंक्लेयर के कार्यकाल में विद्यालय की स्थिति शोचनीय स्तर तक गिर गई थी। विद्यालय को एक गरिमामय शिक्षा संस्थान के रूप में स्थापित करना राजनारायण बसु की प्राथमिकता थी। विद्यालय को लय में लाने के लिए राजनारायण बसु ने आज से 165 वर्ष पूर्व जो प्रयास किए वे आज भी प्रासंगिक हैं।

प्रधानाध्यापक हो बसु जैसा

राजनारायण बसु ने सर्वप्रथम कार्य शिक्षा को रुचिकर बनाने के लिए सभी प्रकार के शारीरिक दण्ड समाप्त कर विद्यार्थियों व शिक्षकों के मध्य मित्रता का वातावरण उत्पन्न किया। राजनारायण बसु रटना व परीक्षा में उगल आने वाली शिक्षा के विरोधी थे,अत: उन्होंने शिक्षकों व बच्चों के बीच संवाद की शिक्षा पर जोर दिया। राजनारायण बसु बच्चों को संबोधित करते समय मुहावरों, चुटकलों आदि का प्रयोग कर वार्ता को इतना रोचक बना देते थे कि कक्षा का सबसे कमजोर विद्यार्थी भी उसमें रुचि लेने लगता था। बसु बच्चों में जिज्ञासा उत्पन्न करने वाली शिक्षा के पक्षपाती थे ताकि बच्चे प्रश्न पूछ कर विषय के मूलभूत आधार को मजबूत कर सके। राजनारायण बसु मानसिक क्षमता बढ़ाने में शारीरिक क्षमता के योगदान को स्वीकारते थे। बसु ने अपने विद्यालय में खेल के मैदान व जिम्नेजियम का विकास कर बच्चों को शारीरिक क्षमता बढ़ाने का अवसर दिया था। राजनारायण बसु का मानना था कि चरित्र निर्माण ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। चरित्र ही मानव को मनुष्य बनाता है। बच्चों के चरित्र निर्माण की ओर ध्यान देने के विशिष्ट निर्देश शिक्षकों को राजनारायण बसु की ओर से दिए गए थे।

राजनारायण बसु एक संवेदलशील शिक्षा प्रशासक थे। बसु का मानना था कि अधिकतम

अधिगम हेतु न्यूनतम भौतिक सुविधाएं अनिवार्य है। बसु के विद्यालय में विद्यार्थियों के बैठने की बेंचों पर पीछे सहारा लेने की सुविधा नहीं थी। बसु ने बेंचों के पीछे सहारा लगवाने की प्रथा प्रारम्भ की। बसु व्यक्तित्व विकास हेतु सह शैक्षिक गतिविधियों की भूमिका को स्वीकारते थे अत: वादविवाद समिति, सहविकास समिति आदि संस्थाओं का गठन अपने विद्यालय में करवाया था।

मिदनापुर में स्त्रीशिक्षा के लिए छात्रा विद्यालय तथा प्रौढ़शिक्षा हेतु सांध्यकालीन स्कूल भी राजनारायण बसु ने प्रारम्भ करवाया था। शिक्षा की निरन्तरता बनाए रखने में स्वाध्याय के महत्व को ध्यान में रख कर सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना भी राजनारायण बसु द्वारा की गई थी। ऋषि राजनारायण बसु स्मृति पंथागार के रूप वह पुस्तकालय आज भी अस्तित्व में है। यह पश्चिम बंगाल प्रान्त का सर्वाधिक पुराना पुस्तकालय है। मिदनापुर में भारतीय संगीत सिखाने की कोई व्यवस्था न देख कर अपने स्तर पर संगीत विद्यालय भी प्रारम्भ करवाया था।

सनातनता के पुजारी

राजनारायण बसु सनातनता के पुजारी थे। 1878 में एक पुस्तक लिख यह प्रतिपादित किया कि प्राचीनकाल वर्तमान की दृष्टि से अधिक प्रगतिशील था। उनकी वह बात आज भी प्रासंगिक है। आज दीर्घजीवी विकास को आधुनिक माना जाने लगा है प्राचीन भारतीय सभ्यता पूर्णत: दीर्घजीवी विकास पर अवलम्बित थी। बसु भारतीय पहनावा, भारतीय खानपान के साथ ही सीखने सिखाने की भारतीय पद्धति पर बहुत जोर देते थे। उनका मानना था कि देश के हर नागरिक को आत्मा से भी भारतीय होना चाहिए।

अंग्रजी के प्रसिद्ध भारतीय कवि माईकेल मधुसुदन दत्त, राजनारायण बसु के परम मित्र थे। राजनारायण बसु अंग्रेजी के विद्वान होते हुए भी भारतीय भाषाओं के प्रबल पक्षधर थे। बसु को यह जान कर बड़ा दु:ख हुआ कि बंगिया साहित्य परिषद की कार्यवाही अंग्रेजी में हुआ करती थी। यह वैसा ही था जैसा हिन्दी दिवस का आयोजन अंग्रेजी में हो। बसु ने

इसका प्रतिरोध किया तब बंगिया साहित्य परिषद की कार्यवाही बंगला भाषा में होने लगी थी। राजनारायण बसु को इतने पर ही संतोष नहीं हुआ। बसु ने एक प्रस्ताव पारित करवाया कि बंगला भाषा में अंग्रेजी शब्दों का उपयोग करने पर दण्ड लगेगा। यह बात सभी स्थानों पर प्रचलित हो गई थी। स्वामी विवेकानंद राजनारायण बसु से मिलने आए तो यह प्रदर्शित किया कि उन्हें अंग्रेजी नहीं आती। एक बंगाली युवक द्वारा अंग्रेजी शब्द का उपयोग किए बिना लम्बा वार्तालाप करने पर बसु बहुत प्रसन्न हुए। बसु को एक स्थान पर प्लस (+) शब्द का प्रयोग करना पड़ा मगर बोल कर नहीं दो अंगुलियों से चौकड़ी बना कर। आजकल हिन्दी में अनावश्यक रूप से अंग्रजी शब्द डाल कर हिंग्लिश बनाने वालों को सबक लेना चाहिए।1878 में अंग्रेजी सरकार ने कानून बना कर भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों पर रोक लगाई तो राजनारायण बसु उस कानून का विरोध करने वाले आन्दोलन से जुड़ गए।

दु:ख किसके जीवन में नहीं होता, राजनारायण बसु के जीवन में भी था। राष्ट्रीयता के परम पुजारी के दामाद के.डी. घोष राजनारायण बसु के विचारों से सहमत नहीं थे। वे अपने पुत्र अर्थात राजनारायण बसु के दोहिते अर्थात अरविन्द को अंग्रेजी पढ़ा कर उच्च पद पर बैठाना चाहते थे। अरविन्द राजनारायण बसु के सानिध्य से दूर अंग्रेज नर्स की देख में पाला गया। छोटी उम्र में ही इंग्लैण्ड भेज कर अंग्रेज परिवार में रखा गया ताकि वे पूर्णत: अंग्रेज बन सके। इतना होने पर भी अरविन्द ने नाना का पथ ही चुना और उनके ध्येय को और भी ऊँचाइयां प्रदान की।

अत्यन्त सरल व्यक्तित्व के धनी

राजनारायण बसु का व्यक्तित्व बहुत ही सरल था। बंगाली समाज में बड़ों से सम्मानजनक दूरी बनाए रखने को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है मगर राजनारायण बसु के लिए यह प्रथा कोई समस्या नहीं थी। छोटा बच्चा भी उनसे खुल कर व्यवहार कर सकता था। रवीन्द्रनाथ भी इनके साथ मित्रवत व्यवहार कर लिया करते थे। सरल व्यक्तित्व के धनी राजनारायण बसु की बुद्धि बड़ी प्रखर थी। अनेक पुस्तकों के लेखक होने के साथ ही ब्रह्मसमाज की स्थापना की तथा राजनारायण बसु आजीवन उसके अध्यक्ष भी रहे। नाबा गोपाल मित्र द्वारा आयोजित हिन्दू मेले का उद्घाटन करने के कारण विरोधी भी भारत में राष्ट्रवादी विचारों का जनक राजनारायण बसु को ही मानते हैं। तत्कालीन राजनैतिक चिन्तन समूह संजीवनी सभा से भी राजनारायण बसु का सक्रिय सम्बन्ध था। जातीय गौरव संपादिनी सभा की स्थापना की।

वंदेमातरम गीत के दीवाने

राजनारायण बसु ने आनंदमठ के लेखक बंकिमचन्द को पत्र लिख उनकी लेखनी अमर होने का आशीर्वाद दिया था। सही कहा जाता है कि ऋषियों की वाणी कभी व्यर्थ नहीं जाती। बंगाल के लोग राजनारायण बसु को एक ऋषि के रूप में पूजते हैं। ऋषि की वाणी सत्य सिद्ध हुई। राष्ट्रगीत वंदेमातरम के रूप में बंकिमचन्द की लेखनी सचमुच अमर हो गई है। समय के साथ राष्ट्रगीत वंदेमातरम को सम्मान देने वालों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही है। राष्ट्रगीत वंदेमातरम गाते समय राजनारायण बसु इतने अभिभूत हो जाते थे कि बेसुरा हो जाने का ध्यान भी उन्हें नहीं रहता था। राजकीय सेवा से निवृत होने के बाद राजनारायण बसु देवघर चले गए तथा मृत्यु पर्यन्त वहीं रहे। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक हैं)

स्वेदशी एवं शिक्षक की भूमिका

भारत के गौरव के बारे में मुझे कोई पूछे तो मैं कहूंगा कि भारत का गौरव भारतीय परिवार एवं भारत की नारी है। अर्थात् यह भारतीय परिवार प्रणाली भारत की संस्कृति को लाखों वर्षों से स्थानांतरित करती आई है। इस परिवार प्रणाली से भारत में सांस्कृतिक मूल्य सुरक्षित है तथा बच्चे, युवक, युवतियां, वृद्ध सभी सुरक्षित हैं। पिछले दिनों भारत में वृद्धाश्रम बनने लगे हैं। हम लोग सोचें, ऐसा क्यों हो रहा है? बहुराष्ट्रीय कम्पनियां संयुक्त परिवार व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करना चाहती है। वो चाहती है कि उनका माल अधिक से अधिक बिके। अत: टीवी. सीरियल पर विज्ञापन न्यूनतम वस्त्र पहनी हुई युवतियों के माध्यम से प्रस्तुत किये जाते हैं तथा ऐसे टी.वी. सीरियल जिनमें पति-पत्नी के बीच में विवाद हो एवं पत्नी के पुरुष मित्र तथा पति की महिला मित्र बने और उस पर विज्ञापन वो देकर परिवार को तोड़ने का षड़यंत्र रच रहे हैं।

❑ डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी

भारत विश्व को परिवार मानता है। वहीं विश्व या यूरोपियन देश हमें बाजार मानते हैं। यह फर्क है भारत के सोच में। आज स्वदेशी की बात करने वाले भारत के लोगों को बुद्धिजीवी दकयानूसी कहते हैं। आज पूरा विश्व एक होने चला है। यहाँ स्वदेशी की रट लगाये हुये हैं। ये देश को विश्व में पीछे धकेल देंगे। आज के परिप्रेक्ष में ऊपर से इन बुद्धिजीवियों की बात ठीक लगती होगी। पर जरा हम विचार करें कि स्वदेशी केवल वस्तु तक ही सीमित है क्या? नहीं स्वदेशी विचार तो देश को स्वाभिमान से खड़ा करने का अमोघ मंत्र है। हाँ यह मंत्र है ''वंदेमातरम्'', हाँ यह मंत्र है जीवो और जीने दो, हाँ यह मंत्र है मानव मात्र का कल्याण हो, हाँ यह मंत्र है वसुधैव कुटुम्बकम का। अर्थात विश्व कल्याण की बात है स्वदेशी। अर्थात् यह अन्तर्राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं अपितु यह स्वर है राष्ट्र प्रेम की साकार अभिव्यक्ति का।

विकास का मार्क्स मॉडल एवं पश्चिमी मॉडल असफल हो रहा है। वैश्वीकरण की बात करने वाले यह भूल जाते हैं कि विश्व में प्रत्येक देश का अपना भूगोल है। वहाँ की अपनी जलवायु है। वहाँ की अपनी सभ्यता-संस्कृति है। वो एक ही प्रकार से कैसे विकसित हो सकते हैं। आधुनिकता का मतलब यह नहीं कि पश्चिमी मॉडल को ही स्वीकार कर लें। यूरोपियन व अमरीकन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की शर्तों को मान ले व उनके पिछलग्गू बन जाये।

वर्तमान चुनौतियाँ - विदेशी आधिपत्य के खिलाफ भारत को स्वतन्त्र कराने का मुख्य आधार स्वदेशी था। आज राष्ट्र जीवन के सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक सभी पहलूओं के बीच सेतु है स्वदेशी विचार है।

पाश्चात्य शिक्षा पद्धति -भारत के विश्वविद्यालयों से लाखों युवक एक स्वप्न लेकर उपाधि ले रहे हैं। वो आजीविका प्राप्त करने हेतु व्यावहारिक ज्ञान से दूर होते हैं, अत: वो बेरोजगारों की संख्या बढ़ाते हैं। पिछले वर्षों में बेरोजगारी दर-बढ़कर लगभग 8.5 प्रतिशत से अधिक हो गई है। देश में सी.ए., सी.एस., इंजीनियरिंग, बी.एड., बी.एससी., बी.ए., बी.कॉम. की उपाधि लेकर दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। मुझे लगता है उपाधि देकर इन युवकों को भ्रमजाल के कुएं में धकेल देते हैं।

वास्तव में शिक्षा वह जो स्वाभिमान के

साथ आजीविका सिखाये। स्वतंत्र आजीविका हमारे शिक्षा का मुख्य अंग होना चाहिए। युवक केवल कठपुतली नहीं बने। वह सद्गुणी, सहिष्णु, आत्मविश्वासी एवं राष्ट्र भक्त बने, इस हेतु हमारी शिक्षा पद्धति में नैतिकता एवं राष्ट्रीय मूल्यों से जुड़ी श्रेष्ठता होनी चाहिए। जरा सोचें, बेरोजगारों की पिछले वर्षों में एक बाढ़ सी आ गई है। **2002-03** - 7.4 प्रतिशत से अधिक तथा प्रतिवर्ष 3.5 प्रतिशत की दर से बेरोजगार थे तथा बेरोजगारी बढ़ रही थी। **2008-09** - 8 प्रतिशत से अधिक बेरोजगारी बढ़ रही है। **2010-2011** - 9.4 प्रतिशत से अधिक बेरोजगारी थी।

हमें शिक्षा पद्धति को आजीविका एवं स्वाभिमान से परिपूर्ण मूल्यों से जोड़ना चाहिए। जिससे युवक बेरोजगार बनकर देश के लिये समस्या खड़ी न करे।

उत्पादन तत्रं पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्जा - मैं आपसे यह निवेदन कर रहा हूँ, प्रतापगढ़ से बांसवाड़ा जाते समय पीपलखूंट पर गाड़ी रुकी। वहां चाय पीने के लिये सभी रुके, चाय के दुकान पर बिस्किट सभी विदेशी कम्पनियों के। मैं दो तीन दुकानों पर गया, वहां पानी पीने के लिये मांगा तो एक्वा फ्रेस, पेप्सी, कोकाकोला की बोतलें मिली। मैं उस क्षेत्र का चित्रण प्रस्तुत कर रहा हूँ जहाँ पर 80 से 90 प्रतिशत आबादी आदिवासी है तथा जहाँ हम जाना पसन्द नहीं करते। वहां पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियां पहुंच गई है। पिछले दिनों मेरे मित्र के बच्चे के जन्मदिवस पर खिलौने के स्टोर पर गया, वहाँ मैंने बार-बार निवेदन किया मुझे भारतीय कम्पनियों के खिलौने चाहिए। पर मालिक बोला साहब यहाँ चाइनीज एवं कोरिया, जापान के खिलौने है। आप अन्य दुकान पर देख लें। देश में उदारीकरण के नाम से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को खुली लूट की छूट मिली है। वो भारतीय दुकानों में 70 प्रतिशत अपना माल डम्प कर रही है। बाजार से भारतीय उत्पाद गायब

होते जा रहे हैं। भारत को बाजार मानते हुये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विज्ञापनों के माध्यम से प्रतिदिन एक मिनट में 10 से 20 लाख रुपये खर्च कर रही है।

भारतीय कृषि पर कब्जा - राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार यह तथ्य चौंकाने वाला है। आज 60 से 70 प्रतिशत किसान कर्जदार हो गये हैं। देश में बीज से लगाकर पेस्टीसाइड तक सब विदेशी कम्पनियों के बिक रहे हैं। एक अध्ययन के अनुसार 3200 प्रकार की चावल के बीज भारत में थे, आज मात्र 32 प्रकार के ही रह गये हैं। यह भारत के जाने-माने वैज्ञानिक डॉ. मुरलीमनोहर जोशी का कथन है। आजकल GMF & GMS की जोरों से चर्चा चल रही है। यदि भारत सरकार ने इसके परीक्षण की अनुमति भारत में दे दी तो देश को फिर भगवान भी नहीं बचा सकता है और किसानों को हम सीधे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के चुंगल में फंसा देंगे। भारत में कृषि उत्पादन हेतु चीन, अमेरिका जैसे देशों से भी अधिक उपजाऊ मैदान है। भारत में कुल कृषि भूमि के 47 प्रतिशत इन उपजाऊ मैदानों के कारण भारत की संतति पूर्ण रूप से आहार प्राप्त कर रही है। परन्तु धीरे-धीरे हमारे अन्नदाता आत्महत्या को मजबूर हो रहे हैं। पिछले 10 वर्षों में भारत में लगभग 3 लाख किसानों ने आत्महत्या की। आत्महत्या के कारण जानने पर ज्ञात हुआ कि किसान ऋण जाल में फँसते जा रहे हैं और ऋण चुका पाने में सक्षम नहीं है। पंजाब जैसे समृद्ध प्रान्त में, विदर्भ- महाराष्ट्र, आन्ध्र जैसे प्रान्तों में आए दिन किसान आत्महत्या कर रहे हैं। पिछले दिनों विदेशी कम्पनियों ने भारत में बंध्य बीजों का प्रयोग कर भारतीय प्राचीन बीजों को लुप्तप्राय कर दिया है। आने वाले समय में प्राचीन बीज समाप्त होने पर किसानों को हजारों रुपये देकर बीज खरीदने पड़ेंगे, इसका उदाहरण वर्तमान में मिर्ची, टमाटर एक किलो बीज के 50,000/- से अधिक रुपये लग रहे हैं। पिछले दिनों मॉनसेन्टो कम्पनी ने भारत की माहिको को अधिकार में कर लिया है, जिससे भारत का बीज बाजार मॉनसेन्टो के अधिकार में जाता दिखाई दे रहा है और किसानों को महंगे बीजों के लिए तरसना पड़ेगा। देश में हम दीपावली मनायेंगे तब देश के किसान कहीं न कहीं आत्महत्या कर रहे होंगे। क्या हम जरा सोचें अब भारत का अन्नदाता इस दशा में क्यों पहुंच रहा है? भारत की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि जिसमें आज भी 60 से 65 प्रतिशत लोग काम कर रहे हैं। यदि इस पर ध्यान नहीं दिया तो आने वाले समय में भारत स्वाभिमान से खड़ा नहीं रहेगा और भारत

को अन्न आयात करना पड़ेगा। स्वदेशी जागरण मंच की यह मान्यता है कि भारत में कृषि जीवन पद्धति है। अत: भारतीय कृषि को विदेशी कम्पनियों के चुंगल से बचाना चाहिये। मैं एक विशेष उदाहरण निवेदन कर रहा हूँ- पिछले दिनों केरल के प्राचीमाड़ा स्थान पर किसानों ने आन्दोलन किया, आन्दोलन क्यों किया? जानेंगे तो दंग रह जायेंगे, किसानों की मांग थी कि हमें हमारा पानी लौटा दो। इस हेतु वहां की विधानसभा का किसानों ने घेराव किया, कोकाकोला नामक विदेशी कम्पनी के षड़यंत्र के कारण हजारों हैक्टेयर भूमि पर उगे नारियल के वृक्ष सूख गये तथा किसान बेरोजगार हो गये। मैं यह बात उस स्थान की बता रहा हूँ जिस स्थान पर जल की कमी नहीं है। जहां वर्षभर वर्षा होती है। जरा विचार करें और सोचें कि हम शिक्षक होने के नाते देश में मूकदर्शक बनकर किसानों की आत्महत्या होते हुए देखेंगे।

सांस्कृतिक मूल्यों को चुनौती- भारत के गौरव के बारे में मुझे कोई पूछे तो मैं कहूंगा कि भारत का गौरव भारतीय परिवार एवं भारत की नारी है। अर्थात् यह भारतीय परिवार प्रणाली भारत की संस्कृति को लाखों वर्षों से स्थानांतरित करती आई है। इस परिवार प्रणाली से भारत में सांस्कृतिक मूल्य सुरक्षित है तथा बच्चे, युवक, युवतियां, वृद्ध सभी सुरक्षित हैं। पिछले दिनों भारत में वृद्धाश्रम बनने लगे हैं। हम लोग सोचें, ऐसा क्यों हो रहा है? एक अध्ययन के अनुसार भारत के महानगरों में किस प्रकार से विवाह-विच्छेद हो रहे हैं, बम्बई में एक हजार विवाह पर 9 से 10 प्रतिशत, कोलकाता में 4 से 6 प्रतिशत, नई दिल्ली में 3 प्रतिशत, चैन्नई में 2 से 3 प्रतिशत लोग विवाह-विच्छेद हेतु अदालत की परिक्रमा लगा रहे हैं। देश में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां संयुक्त परिवार व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करना चाहती है। वो चाहती है कि उनका माल अधिक से अधिक बिके। अत: टीवी. सीरियल पर विज्ञापन न्यूनतम वस्त्र पहनी हुई युवतियों के माध्यम से प्रस्तुत किये जाते हैं तथा ऐसे टी.वी. सीरियल जिनमें पति-पत्नी के बीच में विवाद हो एवं पत्नी के पुरुष मित्र तथा पति की महिला मित्र बने और उस पर विज्ञापन वो देकर परिवार को तोड़ने का षड़यंत्र रच रहे हैं।

इन राष्ट्रों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारत में भी परिवार व्यवस्था को तोड़कर अधिक से अधिक इस प्रकार की व्यवस्था बने, इस हेतु प्रयासरत् है। भारतीय परिवार प्रणाली के कारण देश में कुल वार्षिक आय के 30 से 35 प्रतिशत बचत होती है जो एफडी. आई. की तुलना में कई गुना अधिक है। हमें इस बचत को बढ़ाकर भारतीय अर्थव्यवस्था के भविष्य को सुदृढ़ करना चाहिए। अत: हमें विचार करना पड़ेगा कि हम इस समय देश की शिक्षा व्यवस्था को किस प्रकार से बनायें। हमारा आचरण क्या हो? हम देश के लिये किस प्रकार से संस्कारक्षम युवकों को तैयार करें। यह सोचना ही पड़ेगा।

स्वरोजगार को चुनौती- पिछले दिनों मैं उदयपुर जिले के फतहनगर कस्बे में यह देखकर दंग रह गया कि वहां की तेल मिलों में विदेश (इण्डोनेशिया, मलेशिया) से आने वाला पाम ऑयल पैक हो रहा है और इस क्षेत्र में पैदा होने वाली मूंगफली, इस क्षेत्र में पैदा होने वाली सरसों किसानों के घरों में पड़ी हुई है। उसका उचित मूल्य उनको नहीं मिल रहा है। ऑयल मिल बन्द हो रही है तथा रोजगार समाप्त हो रहे हैं। एक उदाहरण और निवेदन कर दूं कि पिछले दिनों अलवर, भरतपुर क्षेत्र में पैदा होने वाली अपार सरसों एवं सरसों के तेल पर इण्डोनेशियन बहुराष्ट्रीय कम्पनी ने संकट के बादल खड़े कर दिये हैं। उसको रेप सीड्स कांड के नाम से भारत में जाना जाता है। परिणाम पत्रिका में बड़े हेडिंग में आया कि इस क्षेत्र की सैंकड़ों तेल मिलें बन्द। जरा हम विचार करें कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां कैसे हमारा रोजगार छीन रही है। वर्ष 2004-05 में लघु उद्योगों पर एक सर्वेक्षण हुआ उस सर्वेक्षण कमेटी के अध्यक्ष एस.पी. गुप्ता थे। जिन्होंने यह स्पष्ट किया कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कारण भारत के लघु एवं हथकरघा उद्योग तीव्र गति से बन्द हो रहे हैं। इस समय देश में 4187 बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के ऑफिस दिल्ली में कार्यरत हैं। मैं आपसे निवेदन कर रहा हूं कि कुछ समय के लिए अभी सरकार ने खुदरा व्यापार क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को आने से रोक दिया है। परन्तु 100 प्रतिशत खुली छूट एक ब्राण्ड में तो दे चुकी है। वालमार्ट जैसी खुदरा व्यापार में स्थापित कम्पनियां भारत में आने के लिये कई प्रकार के प्रलोभन दे रही है। हम लोग भूल भुलैया में हैं कि भारत में एफ.डीआई. आयेगी तो ही देश का विकास होगा। देश में पिछले दशक में किसी भी वर्ष में 2.3 प्रतिशत से अधिक कुल भारत की वार्षिक आय में एफ.डी.आई. का शेयर नहीं था। अर्थात् भारत की अर्थव्यवस्था भारतीय परिवार प्रणाली द्वारा चल रही है। उल्टे हमारा रोजगार बहुराष्ट्रीय कम्पनियां छीनती जा रही है।

शिक्षक का दायित्व- हम क्या करें? अधिक से अधिक शिक्षा का प्रसार- भारत वैदिक काल से शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र था। दूर-दूर के देशों से भारत में शिक्षा ग्रहण करने के लिये लोग आते थे। जिनमें ह्वेनसांग चीनी यात्री भी था, हमारी इस गौरवपूर्ण व्यवस्था को मुगलों व अंग्रेजों ने अंधकार की ओर धकेला और आजादी के बाद आज भी संपूर्ण देश में 75 प्रतिशत के लगभग लोग केवल साक्षर हैं। विश्व के विकसित राष्ट्र जापान, अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस सभी एकभाषी एवं 100 प्रतिशत शिक्षित समाज है। अत: विश्व में स्वाभिमान से खड़े हैं। हमें अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हुए शिक्षा के प्रसार में अधिकाधिक समय लगाना चाहिये तथा माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के इस आह्वान् को कि गांव-गांव में अधिक से अधिक शिक्षा प्रसार हो, इसको चरितार्थ

करना चाहिए। अत: अपने नजदीक के एक गांव में जाकर हम अतिरिक्त समय में शिक्षा का प्रसार करें।

संयमित उपभोग- हमारी सस्कृति प्रकृति को माँ मानती है। प्रकृति को परिवार मानती है। इसमें चींटी से लगाकर पशु-पक्षी सम्मिलित हैं। इसलिये अपने यहां कहा है- 'तेन त्यक्तेन भुन्जीथा।' उपनिषद के इस संयमित उपभोग के श्लोक को हम जीवन में लेवें। हम विश्व के सामने क्यों पिछड़ रहे हैं? इस पर विचार करेंगे तो हमें यह ध्यान में आऐगा कि हम भी अधिकाधिक उपयोग करने के पाश्चात्य विकास संकल्पना के अनुगामी बन रहे हैं। वर्तमान में हम चीन के घरेलु बचत 50 प्रतिशत से कम 30 से 35 प्रतिशत बचत कर रहे हैं। इस कारण विश्व में हमारे यहां बहुराष्ट्रीय कम्पनियां बाजारवाद का आचरण करती है। जबकि हम विश्व कल्याण की बात करते हैं। कल्याण की बात संयमित उपभोग में ही सम्मिलित है। अत: कहा गया है कि 'सर्वेऽपि सुखिन: सन्तु' अर्थात् पूरा विश्व सुखी संयमित उपभोग से ही होगा। अत: शिक्षक होने के नाते हम इस ओर बढ़ें और ऐसा वातावरण तैयार करें जिससे भारत विश्व को पुन: मार्गदर्शन कर सके।

युवा-भारत का भविष्य - पिछले दिनों विश्व के नम्बर एक महाशक्ति के राष्ट्रपति भारतीय युवा शक्ति के माध्यम से अपने इंस्टीट्यूट में यह बोल रहे थे कि जागो अमेरिकन अन्यथा भारत के युवक यहां आ जायेंगे। यह भारत के लिये सकारात्मक है। उसका मूल कारण भारतीय परिवार प्रणाली के कारण संस्कारित युवा विश्व के अनेक देशों में जहां रह रहे हैं वहां उस देश का निर्माण कर रहे हैं। उनकी निष्ठा पर शंका नहीं है और विश्व में भारत के युवाओं को एक श्रेष्ठ तपस्वी युवकों के रूप में स्थान मिला है। उसको हम और अधिक शक्तिपूर्ण बल देकर निर्माण करें। वर्तमान में भारत में 45 करोड़ युवक जो कि अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, ब्राजील, जापान या विकसित देश की जनसंख्या से अधिक हैं। इन युवाओं को हम भारत निर्माण के लिये, विश्व जीतने के लिये क्या आप तैयार कर पायेंगे? यह हमारे लिये सोचने का और कुछ करने का विषय है। हम युवाओं के माध्यम से देश की बचत को बढ़ा सकते हैं। विश्व में चीन में बूढ़ों की संख्या बढ़ रही है। अमेरिका में वृद्ध एवं सामाजिक कुरीतियां बढ़ रही है। ऐसे ही हाल यूरोपियन देशों के हैं, वहां पर हमारे देश के युवा हमारे देश का पुन: गौरव बढ़ा सकते हैं। अत: हमें युवाओं को टैक्नोक्रेट्स, प्रोफेसर, डॉक्टर, इंजीनियर तथा विशिष्ट प्रकार के कार्यों में दक्ष कर विश्व के अवसरों को हमें अपने देश के लिये मोड़ना है। जिससे देश पुन: एक श्रेष्ठ और विश्व कल्याण के लिये खड़ा हो सके।

स्वदेशी की साकार अभिव्यक्ति

-मैं आपसे एक प्रसंग निवेदन कर रहा हूँ- जयपुर में प्रोफेसर रज्जू भैया एक बैठक में कुछ लिख रहे थे, उस बैठक में मैं भी सहभागी था। उनके हाथ में हल्का सा खून नजर आया, मैंने निवेदन किया, आप पेन बदल लीजिये। त्वरित उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि आज हमारे देश के पेन मार्केट पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्जा हो रहा है, इसलिये मुझे यही पेन अच्छा है। मैं एक घटना और निवेदन करना चाहता हूँ- इस प्रसंग से हम कुछ विशेष शिक्षा लेंगे, घटना इलाहाबाद के पास मुगलसराय की है, वहां पर स्टेशन से उतरते समय मैंने देखा कि युवतियां, युवक, वृद्ध अपने सिर पर नीम का गठ्ठर लिये आवाज लगा रहे थे, बाबूजी नीम का दातुन ले लीजिये, हमने उनसे पूछा कि क्या इससे आपकी आजीविका चल रही है, उन्होंने कहा- बाबूजी स्वाभिमान से कुछ कमा रहे हैं। देश में स्वाभिमान से स्वदेशी वस्तुऐं अपनाने की आवश्यकता है। देश में तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट के अनुसार 29 प्रतिशत लोग एक समय भोजन प्राप्त करते हैं। क्या यह सोचनीय नहीं है? क्या भारत के प्रत्येक नागरिक को भर पेट भोजन नहीं मिलना चाहिये। देश में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हमारे रोजगार छीन रही है। हम उन्हीं की वस्तुऐं काम में ले रहे हैं। वो अपनी वस्तुओं को छोटे-छोटे बच्चों के ऊपर विज्ञापन बनाकर बेच रही है। जैसे- कोलगेट, लाइफ बॉय इसके कारण बच्चे जिद्द करके विदेशी वस्तुऐं खरीदें। एक अनुमान के अनुसार भारत में 40 प्रतिशत से अधिक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विज्ञापन बच्चों पर केन्द्रित हैं।

आज हम इस बारे में सोचें कि भारत के व्यापारी, भारत के किसान, भारत के उद्यमी , भारत के युवा, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगे समस्याओं से ग्रसित हैं। हम लोग शिक्षक होने के नाते देश के भाग्य विधाता होने के नाते इन समस्याओं से देश को कितना जल्दी मुक्त कर सकते हैं? हमें सोचना ही पड़ेगा। मैं अपनी बात को इस उदाहरण के साथ समाप्त कर रहा हूं और आपसे निवेदन कर रहा हूं कि देश के गौरव, देश की संस्कृति को शिक्षक होने के नाते शिक्षा में बदलाव लाकर बचा सकते हैं। मैं मेरे शहर में एक रामस्नेही अस्पताल जा रहा था, वहां मैंने एक बागरिया समाज की महिला को देखा, फटेहाल कपड़ों में छोटे बच्चे को औषधि दिलाने के लिये दौड़ती हुई जा रही थी, पीछे से 7-8 साल के उसी के एक बड़े बच्चे ने उसको आवाज लगाई- माँ, रुको नी। मैं देखकर दंग रह गया। हमारी संस्कृति इन अनपढ़ों में जीवित है। हम अपने घर से शुरुआत करें और देश की श्रेष्ठता की लकीरों को स्वर्णिम बनाने की ओर चलें। स्वामी विवेकानन्द ने इस बात को ध्यान में रखते हुए कि देश का भाग्य देश के शिक्षक बना सकते हैं। वो पर्यावरण को श्रेष्ठ कर सकते हैं। पानी को बचा सकते हैं। खेती को बचा सकते हैं। युवकों को रोजगार दिला सकते हैं और देश के सच्चे सपूत बनकर देश के लिये जी सकते हैं। आइये, संकल्प लें। ❑

(प्राध्यापक, भूगोल, माणिक्य लाल वर्मा राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा)

Bhartiya Knowledge System and Swadeshi

As a matter of fact, Vedas and Upanishads are simply knowledge texts. For Bharatiyas, what we have is the Vedopanishadic knowledge tradition, from which everything Bharatiya comes into existence. One may look at it as a substructure superstructure relation, the Vedopanishadic knowledge tradition is the substructure and everything else is superstructures. We have indisputable evidences to the tremendous amount of knowledge created in this knowledge tradition, and there are texts to this, still present. Many of our knowledge texts must have been lost, but what we see today is more than sufficient to prove our claim of this tremendous knowledge tradition.

❑ **Dr. TS Girishkumar**

Last week, I happened to visit the Vedic site of Dholavira in Kutch along with some friends who came from some other university. The site, just one among some 3700 in three stages (as suggested by Michel Danino in his book 'The Lost River, on the trail of the Saraswati') is indeed ancient, and how ancient, it is really difficult to say. The European chronologists suggested some time frame, which is by and large now rejected. KD Sethna, in his book 'Ancient India in a New Light' tries to show how the European chronologists are sadly mistaken about the chronology of Bharatiya events and history, and in fact, the civilisation and history of Bharat is much older than what they suggest. Archaeologists are still under scientific spell, they do not go about saying anything without cognitive evidence, and though their logic may say one thing, they are unable to spell it out. They do keep insisting on evidences, or they prefer to keep silence. Philosophers are the only free ones here; they go by common and higher logic, when or where they can. The logic of Saraswati site can run as follows; (as a matter of fact the archaeologists are still not prepared to call Vedic sites as Saraswati sites, they finally settle with the name 'Harappan' site, since Harappa was the first discovered site among them. Prior to this name of Harappan, the Europeans mistakenly named it as Indus sites and the civilisation Indus valley. However, they now call it as Harappan, albeit people still keep talking about Indus Civilisation)Rigveda is the first ever written text of mankind, and there shall be no dispute to this statement. Rigveda speaks much about the river Saraswati as the mighty flowing, very powerful very wide etc. At the same time, Rigveda very rarely mention the river Sindhu, and also as not very important one, though one of its tributary used to be a main feeder river to Saraswati. Now the philosopher's logic is this; Rigveda was composed during a time when the river Saraswati was flowing full swing. From here it may be rather easy to make a conjecture, we know that the river Saraswati dried up, and it is possible for us to visualise how long ago did this phenomenon happened. Form this, one can say that the peak time of Saraswati was the time of the Vedas, how many thousand years old, is left to imagination for the time being. But it certainly is not just before three or five thousand years ago.

Michel Danino says that the 3700 Vedic sites were spread over 88,000 square kilometres, to the north up to the river Sindhu, to the south up to the river Tapi, to the east up to the river Ganga and to the west, up to Kutch. He also says that 60% of the sites are in today's Gujarat alone. It is amazing that all these sites had so many things in common; they had similar sized bricks, similar weight and measures etc. and all these suggesting that they were one people, and one civilisation. At Dholavira I saw amazing water management for drinking as well as sewage. They were filtering water through underground stone cut wells, seventeen of them were excavated. They also used to recycle sewage for other uses through recycling system. The citadel, the north gate, the cremation ground, and everything just leaves anyone simply spell bound. Indeed, our ancestors were very knowledgeable people.

As a matter of fact, Vedas and

Upanishads are simply knowledge texts. For Bharatiyas, what we have is the Vedopanishadic knowledge tradition, from which everything Bharatiya comes into existence. One may look at it as a substructure superstructure relation, the Vedopanishadic knowledge tradition is the substructure and everything else is superstructures. We have indisputable evidences to the tremendous amount of knowledge created in this knowledge tradition, and there are texts to this, still present. Many of our knowledge texts must have been lost, but what we see today is more than sufficient to prove our claim of this tremendous knowledge tradition. Let me site few examples as instances. Arya Bhatta calculated speed of light, orbits of planets, planetary positions, distances between planets, their diameters, radiuses and many such things, which today's science finds as correct. Ulluka spoke about molecules, atoms, electrons etc., as he gave theories about Kana, Anu and Paramanu, and because of his theories, he came to be known as Maharishi Kanada. There are many more instances of such amazing evidences to the knowledge gained by ancient Bharatiyas. No one would have believed these, but the evidences of texts compel people to accept these knowledge brought out.

Now everyone may have a serious problem, as they fail to visualise how these people must have acquired them. It is here that one ought to understand the distinctive features of Bharatiya epistemology, or Bharatiya knowledge tradition. Europe has the scientific methods of knowing, which is cognitive. It is a simple one, based on sense-object-contact experience. For them, sense organs determine everything, and they are unable to go beyond. Scientists from Einstein onwards had to struggle with this problem, Einstein found out things, but was unable to explain them. Later, new scientists experienced this much more, and some of them took refuge in the Vedopanishadic knowledge tradition to go any further.

For Bharat, the knowledge tradition had been different. The ancient ones trained themselves in trans-sensory cognition, by training their very minds, and preparing their minds to receive knowledge not depending on the sense organs, directly. Arya Bhatta did this, Kanada did this, Caraka and Susruta did this, and all of them did this very thing. A Maharishi is also an Acharya, and in modern terms a professor. Modern professors depend on cognitivity to know, but Bharatiya Acharyas knew things Trans sensory. Here, one can take help from Maharishi Patanjali's philosophy of Yoga, and this shall explain all. In one word, the methodology of Bharatiya Maharishis, or professors were direct, they were able to 'experience' things directly through what may be known as 'Anubhava'. Hence our knowledge had been direct and experiential; whereas European knowledge had been merely cognitive.

Today a reversal is not possible, and perhaps it is not required also. Our education is mostly in European pattern, and we are mostly Europeanised also. Indeed this is an easy method. But what about the ancient Bharatiya tradition and the knowledge already made out by the ancestors? Are we to neglect them? How do we account and care them?

It is here that education based on Swadesi becomes inevitable. Swadesi is a concept that carries all knowledge tradition of Bharat, and recognising that it all originates from the Vedopanishadic knowledge system. Swabhimana as demanded by Swami Vivekananda is supposed to be based on the knowledge of Swadesi, and what is Bharat. The pride must not be an empty one; it must be solidly based on knowing what one is, and what one's ancestry is. The Sanskriti of Bharat is yet another base for one's Swabhimana, and needless to say, that Bharatiya Sanskriti is also a product of the Vedopanishadic knowledge system. Swadesi combines the outward political and practical expression of all these.

Let us understand that Swadesi ought to become a culture, a Sanskara. It must be the guiding principle in every walk of life, guiding us in the right direction always. Swadesi is not meant to oust all 'videsis' but it ought to be a consciousness. One must know where he really stands. Education must be so designed to create awareness of Swadesi in students and in the society. The strength of a nation comes from its unity, the real unity comes from knowing what a nation is. For us, our nation is a Sanskriti, a knowledge tradition, spirituality, a phenomenon of co-existence as well as struggle when required. Let us put all these into the concept of Swadesi and educate our future generations in this direction. After all, we really have to go much in making India Bharat. ❑

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

Swadeshi Self Esteem and Education

❑ Prof. A. K. Gupta

Time is just right to remember our ancient knowledge may it be Environment, Mathematics or Statistics, Vehicle Science, Naval ships, Ayurvedas, Astronomy and Astrology, Mechanics, Havan or Yagya science, Vastu kala, Time calculations to name a few. In every yagya, time and place etc are established by the purohit enchanting Sankalpa. Invention of Algebra and geometry is credited to Indians; "To the Hindus is due, the invention of Algebra and Geometry and their application to Astronomy"- Monier Williams. As referred by Dr V. S. Tripathi in his book " Prachin Bharat ka Samruddha Gyan Vigyan", Mrs Wheeler Willox states "We have all heard and read about the ancient religion of India. It is the land of the great vedas, the most remarkable works, containing not only religious ideas on a perfect life, but also facts which all the science has proved true. Electricity, Radium, Electronics, Airship, all seem to be known to the sires who found Vedas."

On the eve of Mangalyaan approaching Planet Mars we feel proud simply because the mission is related to our motherland i.e. India. This reminds us of our natural identity related to Gondawana Land, which with passage of time moved to form what is called today INDIA or Bharat or Hindustan and we feel proud to be an Indian, Bharatiya and above all a Hindu since we belong to Hindustan. This belongingness gives us a self esteemed identity, a source of inspiration to do something different to elevate our pride for our nation.

Time is just right to remember our ancient knowledge may it be Environment, Mathematics or Statistics, Vehicle Science, Naval ships, Ayurvedas, Astronomy and Astrology, Mechanics, Havan or Yagya science, Vastu kala, Time calculations to name a few. In every yagya, time and place etc are established by the purohit enchanting Sankalpa. Invention of Algebra and geometry is credited to Indians; "To the Hindus is due, the invention of Algebra and Geometry and their application to Astronomy"- Monier Williams. As referred by Dr V. S. Tripathi in his book " Prachin Bharat ka Samruddha Gyan Vigyan", Mrs Wheeler Willox states "We have all heard and read about the ancient religion of India. It is the land of the great vedas, the most remarkable works, containing not only religious ideas on a perfect life, but also facts which all the science has proved true. Electricity, Radium, Electronics, Airship, all seem to be known to the sires who found Vedas."

Samskrit is the knowledge tradition of Bharat. Samskrit was the medium of communication, education, law, administration, trade, commerce, art, entertainment, research and of all modes of intellectual debates till a few centuries ago. One quote from the book "Samskrit in Science", "The world is due to the SUN GOD. The living beings get their strength and energy from him".

Numerous system but with one concept is highlighted by Shri Suresh Soni in his book " Hamari Samskrutik Vichardhara ke mool Shrot", People may have different approach for Living traditions, Social customs etc as per requirement of the local and/ or climatic conditions but have one conclusion i.e. concept of Society. We may have Rishi, Muni, Yati, Thirthankar, Tathagat, Tapas, Siddha, Jin, Ahart, Acharya, Nayanmar, Sant, Bhakt, guru etc but with one goal i.e. achieving ultimate GOD.

Scientific Tradition as discussed by Shri Suresh Soni in his book "Bharat mein Vigyan ki Ujjawal Parampara", is prevalent since ancient time by study and research. Rishi Bhrigu refers to ten shastras namely Agriculture, Water, Mineral, Navigation, Chariot, Fire driven vehicles, Vesham, Prakar or geometry or shape, Town planning, Instrument shastra. Rishi August deals with Electric Shastra, While other shastras dealt with are: Kinetics, Metals, Aeronautical, Textiles, Naval ships, Mathematics, Time Calculations, Astronomy, Vastu and Building Science, Chemical Engineering or Chemistry, Botany, Agriculture, Zoology, Health Sciences, Sound and its origin, Writing or Lipi Science etc. Further Theoretical Science in India and Western Countries is discussed e.g. Newton and Einstein. Further Indian concept of three worlds namely Sthool. Suksham and Karan, similarly three states namely Awakening, Dreaming, Sleeping are discussed prior to three powers namely Kriya, Gyan and Ichcha

or Will power.

Recently during Abhiyanta Sangam 2071 at Udaipur many such achievements were presented and discussed by Baba Satyanarayan Mourya on his platform Bharat Bhkti through live performance. Feeling of self for the country was elevated during visit to Pratap Gaurav Kendra where everyone present found shaken for the sacrifice made by the great Maharana Pratap and others. Their concern for the environment could not be under estimated. However the various techniques are being implemented in the present time, for betterment of the poor strata in rural area were also shared by the participants.

It was a coincidence of Hindi Day celebrated on 14 Sep and Engineers Day celebrated on 15 Sep with the theme "Making Indian Engineering World Class". Some of the deliberations are worth mentioning which talked about remarkable achievements of Indian Engineering at the international scenario. Main issue talked about the availability of Man power and its continuous training to remain in tune with the main stream. Shortage of Competent faculty is being felt in every walk of the life. Merely having degree does not serve the purpose.

Recent visit of the China President also highlighted their man power. More so because they have streamlined it to get maximum output to spread their quantitive approach. If we talk about the quality they are nowhere in competition to us. Devotion and dedication of Indians is incomparable if they work with the zeal.

Organisation of National Conference on Higher Education is a welcome step. More and more discussion and interaction will definitely lead to concrete conclusions which will be helpful for finding right path. Formation of a document or policy called RUSA i.e. Rashtriya Uchhatar Shiksha Abhiyan may be one thing but its implementation and getting proper results may be another one. Dissemination of Research work to public at large should not be ignored.

Need of the hour is to focus and find smaller objectives for each one and work with dedication to provide some useful result for betterment of the society e.g. in organised or unorganised sectors, formal or informal fields, In blue collar or white collar jobs. There may be several fields where one can find opportunity to excel e.g. Foot wear development, Fashion Technology, Masons, Bar benders, Painters, Welders to name a few.

Jyotish and Vaastu play important role in deciding what is suitable to a particular person and the same may not be suitable to other one. Indian astrology if used properly gives suitability to a person, one can find what is suitable to a person may it be food or profession type. Colour of a wall in east side may be more soothing with colour similar to rising Sun, Similarly In South East side Colour depicting fire are preferred. South walls may be darker in shade while North side walls may be lighter in shade. Rahu Kala vela should be avoided in beginning of an auspicious event. Such treatments in Indian Astrology are worth appreciating but this should not make a person more dependent on Fate/ Luck and continue to have faith on Purushartha Self capability. Every one of us should be aware of the fact that our traditional knowledge bank is strong enough to provide guidance/ directions for the right path.

Indian Achievement to reach Planet MARS in its maiden effort is worth appreciating and the same has been complemented by our Prime Minister at ISRO Banglore centre. Prime Minister also urged upon to follow Make in India. This gives motivation to all of us to move in the right direction and pave way for development of our Nation India. Thus we can appreciate that GOD helps those who help themselves for betterment of the society.

Cancellation of Coal Mines blocks by the Supreme Court is another example to get learning that one should move in right direction by following ethical approach. To think for poorest one and work for the lager segment of the society i.e. for Younger generation is need of the hour. Our Education system should follow right steps to move the nation in proper way to achieve Goals.

Sayings of Swami Vivekanand become relevant and important: "Dharma hi Bharat ki Atma hein". Five points should be focused i.e. Yuva Shakti (Youth), Samvardhini (for Females), Gramayan (Rural based applications), Asmita (Jan jati verga i.e. for persons living in Hilly and Vanvasi area) and Prabuddha Bharat (Learned Verga). To follow these India will definitely be World Power one day which may not be far away. ❑

(Professor, Structural Engineering Department, Jai Narain Vyas University, Jodhpur)

In school, but are they learning?

Worldwide, research shows that one of the most reliable predictors of success in later grades is good reading ability in early grades, which comes from good teaching and from a print-rich environment, says Shrinivasan. "Most children in this country come from homes where recreational reading is not a priority or even a possibility, and so they depend on school for their books. Most schools tend to choose some preachy morally uplifting books that no one wants to read, and these too are not easily accessible to children," she stresses.

❑ **Subodh Varma**

Across the country, there is a simmering unease with the education that our 315 million students are getting. Every body wants education, but most are dissatisfied with it. The biggest issue is this: will it help make a better life? But there is also the feeling, often confirmed, that students are not really learning much.

Several surveys of how well students are learning have shown dismal results.According to the ASER 2013 survey report, 60% of Class 3 students surveyed couldn't read a Class 1 text. This is up from 53% in 2009. This doesn't improve in higher classes -53% of Class 5 students couldn't read a Class 2 text, up from 47% in 2009. A higher proportion is unable to deal with subtraction and division.

Although she doesn't give much credence to these surveys, Anita Rampal, professor of elementary and social education at Delhi University's Central Institute of Education, agrees that the schooling system is not delivering. There are three key factors behind a successful schooling system, according to her: building of knowledge and critical faculties, good facilities and environment in school, and an equitable system where all kinds of children learn together.

"In India, we're lagging in all three and that is why students are not learning to their full potential," rues Rampal.

Lessons in schools are often information driven, with the teacher giving information that students are expected to soak up and reproduce in the poorly designed examinations, she explains. Classrooms are dull, teachers just stuff information into students and the examcentric approach finishes off any possibility of 'learning'. Contrary to popular perception, children drop out of school most often because they are not getting anything from it, says Meena Shrinivasan, an awardwinning children's books author and educational consultant.

"Either the language used in school is too foreign to them and they are treated like inferior species, or the matter being taught is irrelevant, or the absence of toilets for girls makes it impossible to continue, or the teacher is

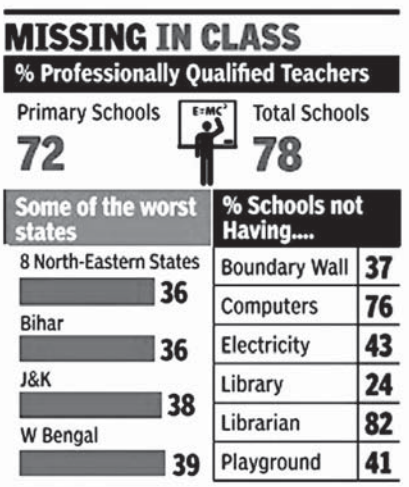

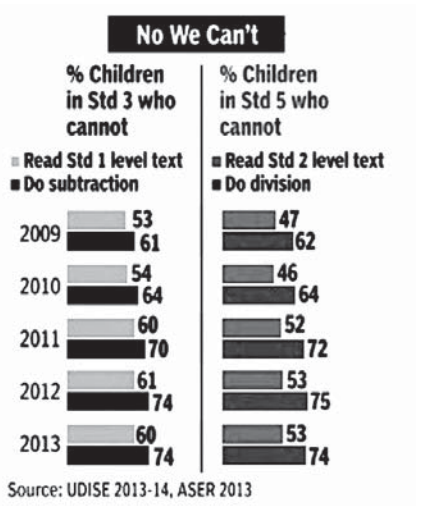

harsh and beats children for not understanding or performing, or it is all just so boring and burdensome that it is just more fun to drop out," she says. The most vulnerable students, dalits, tribals and girls quit school the first.

A recent survey of nearly 1.52 million schools by NUEPA reveals a startling picture of facilities in schools. Over 41% schools do not have a playground, 43% don't have electricity connection, 76% don't have computers. Although more than three quarters of the schools had a library, 82% did not have a librarian to look after the books and guide the children.

Worldwide, research shows that one of the most reliable predictors of success in later grades is good reading ability in early grades, which comes from good teaching and from a print-rich environment, says Shrinivasan. "Most children in this country come from homes where recreational reading is not a priority or even a possibility, and so they depend on school for their books. Most schools tend to choose some preachy morally uplifting books that no one wants to read, and these too are not easily accessible to children," she stresses.

Teachers who enjoy books and can share this passion with children, and know how to teach reading, and a plentiful supply of age-appropriate interesting fiction and non-fiction are what children need more than any other educational input, Shrinivasan says.

But the condition of teachers is such that 28% teachers in primary schools are not even professionally qualified according to official statistics. In some states the situation is even worse. In the eight northeastern states, just 36% teachers are qualified on an average. In Bihar, Bengal and J&K about 3 out of 5 teachers are not duly qualified to teach primary students.

Whole generations of children -India's future - are going through this broken education system, somehow managing to get past exams, or dropping out by the wayside. It is not difficult to imagine what their, and the country's future is likely to be if things are not improved drastically. ❑

Panel to invite different sections for suggestions on UGC

A newly constituted committee to restructure University Grants Commission (UGC) by the HRD ministry has indicated to invite suggestions from academicians, students, researchers and general public to determine educational standards and regulate them.

Dr Hari Gautam, chairperson of this committee, told "The committee will soon float its website inviting ideas and contributions from all stakeholders. The idea is to identify people who want to contribute in the process of building a robust policy for higher education."

He added the committee will also reach out to the people who made valuable suggestions and assign them some responsibility to take it further. "This is a mammoth task and with the help of people's participation we will achieve the goal in stipulated time period of six months," said Gautam, former UGC chairman.

Gautam was in Jaipur to attend a conference on 'Monitoring Mechanism in Higher Education' organized by Akhil Bharatiya Rashtriya Shaikshik Mahasangh (ABRSM). The conference concluded on 14th September.

The committee was set up to evaluate UGC's performance in coordinating and determining education standards in varsities and regulating them. It was also assigned a role to suggest measures for checking private education sector, encouraging research work and regularizing accreditation system.

He said that besides central institutions, holding dialogue with state universities is also high on the agenda. He explained, "Every state has its own academic character and to form a collective action plan, the need is to understand the concerns of state universities."

The committee will soon hold an interactive session with the principals of 63 UGC grant colleges in this regard.

In a bid to create uniformity among central universities, HRD ministry has decided to frame guidelines for common admission, common curriculum, student and faculty mobility as well as a national system of credit transfers. It has also been decided to evolve a national ranking system of central universities.

These decisions were taken in the two-day retreat of HRD minister Smriti Z Irani with vice-chancellors of central universities in Chandigarh. A committee comprising VCs of central universities of Kerala, Jharkhand, Gujarat, Baba Bhimrao Ambedkar University, Tripura, Delhi and Pondicherry University has been constituted to frame the guidelines . The committee has been asked to submit its report within a month.

Vedic learning is no one's preserve, everyone's pride

❑ **Amish**

Pride is good. All great nations understood this. Moreover, we do not even have to resort to fiction to instil pride in ourselves. The Vedic people were our ancestors. We should have justifiable pride in their achievements and learn from them. As for the risk of arrogance, which may follow pride, those pitfalls can be avoided with help from our rich treasuretrove of archetypes. Concepts like integral unity and oneness teach us that it is in our own interest to guard against hatred for the other and the arrogance it leads to. But for now, it is important to build our pride; for it is the fuel that will help us build our nation.

It's wise to resist the temptation to only read articles that align with our worldview. Opening our minds to all shades of opinion can be enlightening. We might otherwise find ourselves inhabiting `echo-chambers', which leads to even simple things becoming political and divisive, in an interesting playout of Aristotle's Law of the Excluded Middle.

One such discourse that has got heavily politicized, making rational discussion impossible, is the study of Vedic knowledge: Vedic science, mathematics, liberal philosophies, literature, politics, economics, ethics, etc.Interestingly, foreign universities have full-fledged departments dedicated to these subjects; but most of them encapsulate a superficial understanding. Departments in Indian universities on these subjects are woefully understaffed and underresourced.

One reads articles and hears dire warnings about the dangers of studying Vedic subjects. Some fear that this will lead to `saffronization'. Someone recently claimed that this "right-wing pridebuilding project of Vedic studies will lead to extremism and hatred; and remember, pride comes before a fall".

Reducing Vedic studies to a purely `right-wing project' is an affront to the wealth of wisdom from our past. Our Vedic heritage is not the preserve of only `right-wing Hindus', it belongs to every person in the Indian subcontinent. Genetic studies have shown that most people within the subcontinent carry combinations of the AncestralNorth-Indian (ANI) and the AncestralSouth-Indian (ASI) genetic groups.These groups have inhabited the subcontinent for at least 6,000 years, if not more, heavily intermingling in the ancient past. Contrary to popular belief in the `racial distinctness' of North Indians and South Indians, practically all North Indians have some proportion of ASI, and South Indians some proportion of ANI, in their gene pool. That means almost all groups

in the subcontinent today have descended from the ancient Vedic people. This holds true across religions, languages, castes and even national boundaries. It would be wrong for anyone to claim exclusive rights over Vedic knowledge; it is the subcontinent's heritage. Studying it is not a `right-wing' project. It concerns us all.

Let's talk about this issue of `pride'. It is contended that the study of Vedic life will generate pride within us, and that this is inappropriate, even dangerous. We should instead focus on the future. Indeed obsessing about our past and ignoring our future is immature. However, should we swing to the other extreme and ignore our past completely? Is pride such an all-encompassing negative emotion?

Yes, pride does come before a fall. But one cannot fall if one hasn't risen to begin with and is weighed down by timidity. There are stages in the acquisition of pride. It begins with confidence and self-respect which help you succeed. Over time, this may transform into pride and regrettably, even arrogance; that's when you fall.

All great leaders and nations have understood the role of self-respect in achieving success. They built myths about themselves and their past. Many a time, these myths were not based on known facts. However, as long as the people believed in them, society moved forward, powered by confidence. The Anglo-Saxons of the US and Great Britain appropriated many of the Greek myths, even though they were a different ethnic group; they differed culturally as well since the ancient Greeks weren't Christian.

The Aryan invasion theory (now believed by many to be a work of fiction) was proposed by the Germans and British with similar aims. The Germans wanted to appropriate a great past by holding that their ancestors created the Vedic way of life. Remember, they couldn't claim the Roman way of life since history has recorded that Germanic tribes destroyed the Roman Empire. The Aryan myth was convenient for the British as well, since they could convince the Indians living under their yoke that what they thought was their greatest achievement, the Vedic way, was actually not their own but the gift of invading `white men'. Destroyed pride made for compliant slavery.

Pride is good. All great nations understood this. Moreover, we do not even have to resort to fiction to instil pride in ourselves. The Vedic people were our ancestors. We should have justifiable pride in their achievements and learn from them. As for the risk of arrogance, which may follow pride, those pitfalls can be avoided with help from our rich treasuretrove of archetypes. Concepts like integral unity and oneness teach us that it is in our own interest to guard against hatred for the other and the arrogance it leads to. But for now, it is important to build our pride; for it is the fuel that will help us build our nation.

Let's study the works of our Vedic ancestors. Let us harness our past, look to the future with confidence and create, once again, a great, genuinely liberal, wealthy and just society. ❑

(Amish is the author of the shiva trilogy)

शोध परक संस्कृति की बाधाएं

❑ शशांक द्विवेदी

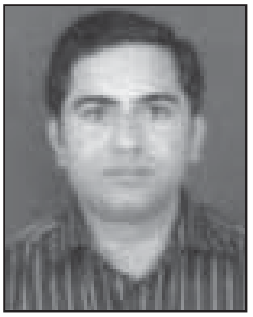

उच्च शिक्षा पाने वालों में से केवल एक प्रतिशत छात्र ही शोध करते हैं। किन विषयों पर शोध हो रहा है और समाज के लिए उसकी क्या उपयोगिता है, इसका मूल्यांकन करने वाला कोई नहीं है। इसके उलट यूजीसी के कई सारे ऐसे प्रावधान हैं, जो गंभीर शोधपरक संस्कृति के विकास में रुकावट डालते हैं। वास्तव में विज्ञान के लिए एक समयबद्ध राष्ट्रीय नीति जरूरी है। विज्ञान के क्षेत्र में विकास के लिए वैज्ञानिकों की जरूरत होगी और वो भी आधारभूत विज्ञान विषयों से जुड़े शोधार्थियों की, इसलिए यह जरूरी है कि मेधावी छात्रों को विज्ञान विषय पढ़ने के प्रति प्रेरित किया जाए। विज्ञान के छात्रों और शोधार्थियों को रोजगार की गारंटी दी जाए। वैज्ञानिक अनुसंधान कल-कल बहती जलधारा की तरह हैं। इनमें सततता जरूरी है एवं स्वायत्तता भी।

केंद्रीय बजट में सरकार ने विज्ञान के विकास, शोध परियोजनाओं की बढ़ोत्तरी तथा अनुसंधान कार्य के लिए शोध फंड संगठन बनाने की बात कही है। इस संगठन के जरिए छात्रों को शोध परियोजनाओं के लिए सहायता दी जाएगी। फिलहाल देश में प्रौद्योगिकी विकास कोष के नाम पर सौ करोड़ रुपये आवंटित किये गए हैं। पांच नए आईआईटी और पांच आईआईएम बनाने की घोषणा भी हुई है लेकिन बजट में देश में बुनियादी विज्ञान के विकास के लिए कुछ खास नहीं है। कुल मिलाकर सरकार ने विज्ञान और तकनीक के पूरे क्षेत्र के लिए बजट में जीडीपी का लगभग एक प्रतिशत दिया है जो उम्मीद से काफी कम है। यह उम्मीद से कम इसलिए भी कहा जाएगा क्योंकि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी विज्ञान और तकनीक को बढ़ावा देने की बात कई मंचों पर कह चुके हैं। पूर्व प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह ने भारतीय विज्ञान कांग्रेस समारोह में कहा था कि हमें विज्ञान व प्रौद्योगिकी पर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का कम से कम दो प्रतिशत खर्च करना चाहिए। यह सरकार और उद्योग जगत दोनों की तरफ से होना चाहिए। बाकी देशों से तुलना करें तो अमेरिका और चीन सहित दुनिया के तमाम छोटे-बड़े देश विज्ञान व अनुसंधान के क्षेत्र में बजट बढ़ाते रहे हैं। दक्षिण कोरिया जैसे देश में भी सकल घरेलू उत्पाद का बड़ा हिस्सा विज्ञान क्षेत्र पर खर्च होता है, जिसमें उद्योग जगत का सहयोग भी अहम है। सरकार द्वारा इस बारे में चिंता तो व्यक्त की जाती रही है लेकिन समाधानस्वरूप वास्तविक धरातल पर कुछ भी क्रियान्वित नहीं हो पाता है। कुल मिलाकर देश में वैज्ञानिक शोधों की दशा अत्यंत दयनीय है। भारत रत्न प्रोफेसर सीएनआर राव भी देश में विज्ञान और तकनीक क्षेत्र के लिए कम बजट देने के लिए सरकार और राजनीतिज्ञों की आलोचना कर चुके हैं। उन्होंने कहा था कि देश में वैज्ञानिक शोध को बढ़ावा देने के लिए जो सरकारी बजट है या जो फंड है, वह काफी कम है। अंतरिक्ष के क्षेत्र में भारत तरक्की जरूर कर रहा है लेकिन वहां के लिए भी समुचित बजट उपलब्ध नहीं है। अमेरिका की तर्ज पर चीन अपनी क्षमताओं का लोहा मनवा रहा है लेकिन हमारे देश में विज्ञान का मौजूदा

बुनियादी ढांचा बेहद कमजोर है। देश में विज्ञान और शोध की स्थिति का आलम यह है कि विज्ञान में पीएचडी करने वाले हजारों लोगों में से 60 प्रतिशत बेरोजगार हैं। इस स्थिति के लिए हमारे विद्यार्थी या उनके अभिभावक जिम्मेदार नहीं हैं। दरअसल हमारी शिक्षा प्रणाली में ऐसा बोध ही पैदा नहीं किया जा सका है कि विज्ञान को पाठ्यक्रम में शामिल विषय से आगे समझा जाए। शायद यही वजह है कि पिछले 50 सालों में देश एक भी ऐसा वैज्ञानिक पैदा नहीं कर पाया, जिसे पूरी दुनिया उसके अद्वितीय शोध के कारण पहचाने। बतौर वैज्ञानिक भारतीय नागरिक (सीवी रमन) को नोबेल 84 साल पहले (1930 भौतिकी) मिला था। तब से हम भारतीय मूल के विदेशी नागरिकों द्वारा अर्जित नोबेल पर ही खुशी मनाते आए हैं। आजादी के समय जब देश में संसाधन कम थे, तब हमारे यहां जगदीश चंद्र बोस, नोबल पुरस्कार विजेता सर सी वी रमण, मेघनाद साहा और सत्येन बोस जैसे महान वैज्ञानिक हुए, लेकिन आज जब संसाधनों की कमी नहीं है, तो देश में विज्ञान शोधों की स्थिति दयनीय बनी हुई है। यह विड़म्बना है कि बाद के समय में बुनियादी सुविधाओं के अभाव में हरगोबिंद खुराना, एस. चन्द्रशेखर, अमर्त्य सेन और डॉ. वेंकटरामन रामकृष्णन जैसे देश में जन्मे वैज्ञानिकों ने विदेशों में जाकर उत्कृष्ट कार्य के लिए नोबल प्राप्त किया। देश के ज्यादातर विश्वविद्यालयों में शोध के लिए स्थान काफी कम रह गया है। उच्च शिक्षा पाने वालों में से केवल एक प्रतिशत छात्र ही शोध करते हैं। किन विषयों पर शोध हो रहा है और समाज के लिए उसकी क्या उपयोगिता है, इसका मूल्यांकन करने वाला कोई नहीं है। इसके उलट यूजीसी के कई सारे ऐसे प्रावधान हैं, जो गंभीर शोधपरक संस्कृति के विकास में रुकावट डालते हैं। वास्तव में विज्ञान के लिए एक समयबद्ध राष्ट्रीय नीति जरूरी है। विज्ञान के क्षेत्र में विकास के लिए वैज्ञानिकों की जरूरत होगी और वो भी आधारभूत विज्ञान विषयों से जुड़े शोधार्थियों की, इसलिए यह जरूरी है कि मेधावी छात्रों को विज्ञान विषय पढ़ने के प्रति प्रेरित किया जाए। विज्ञान के छात्रों और शोधार्थियों को रोजगार की गारंटी दी जाए। वैज्ञानिक अनुसंधान कल-कल बहती जलधारा की तरह हैं। इनमें सततता जरूरी है एवं स्वायत्तता भी। विज्ञान के विषय में राष्ट्रीय नीति बनाने और उस पर गंभीरता से अमल करने की जरूरत है। ऐसा नहीं है कि हमने उपलब्धियां हासिल नहीं की हैं, लेकिन हमारी योग्यता और क्षमता के लिहाज से हम इस मोर्चे पर अब भी काफी पीछे हैं। अंतरिक्ष क्षेत्र में बेशक हमारी कुछ उपलब्धियां भी हैं, लेकिन इससे इतर कोई नई खोज अब तक हमने कहीं की है। जबकि पड़ोसी देश चीन योजनाबद्ध तरीके से काम कर रहा है। वहां जो भी काम होता है, वृहत और युद्ध स्तर पर होता है। चाहे वह सड़क निर्माण का कार्य हो, अंतरिक्ष कार्यक्रम हो या फिर ओलम्पिक फतह का काम। चीन ने यह जान और मान लिया है कि बौद्धिक संपदा के विकास और समृद्धि बिना वह 2020 तक अमेरिका को नहीं पछाड़ सकता है। इसी का नतीजा है कि अब वह वैज्ञानिक शोध और विकास के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर जुट गया है। चीन के विश्वविद्यालय और उद्योग बड़े पैमाने पर इस काम को अंजाम दे रहे हैं। इसके लिए अनुकूल माहौल के साथ वहां की सरकार ने अपने खजाने खोल दिए हैं। इसी तरह अमेरिका बुनियादी विज्ञान विषयों की प्रगति का पूरा ध्यान रखता है। उसकी नीति है कि वैज्ञानिक, मजदूर तो वह भारत से लेगा पर विज्ञान और टेक्नोलॉजी के ज्ञान पर कड़ा नियत्रंण रखेगा। चीन में भी शिक्षा का व्यावसायीकरण हुआ है, पर बुनियादी विज्ञान और टेक्नोलॉजी की प्रगति का उसने पूरा ध्यान रखा है। भारत को चीन से शिक्षा लेनी चाहिए। 'वर्ल्ड क्लास' बनने के लिए बुनियादी विज्ञान का विकास जरूरी है। संसद या सर्वदलीय बैठक में देश के शीर्ष वैज्ञानिकों से विचार करके 5-5 वर्षों के लिए विज्ञान के लक्ष्य निर्धारित होने चाहिए ताकि जाना जा सके कि देश चरणबद्ध तरीके से आखिर कितना आगे जा सकता है और इसके लिए कितने धन की आवश्यकता होगी? प्रधानमंत्री को वादे पर अमल करते हुए विज्ञान और अनुसंधान के लिए और अधिक धनराशि स्वीकृत करनी चाहिए ताकि वैज्ञानिक अनुसंधान में धन की कमी आड़े न आये और देश में वैज्ञानिक शोध और आविष्कार का सकारात्मक माहौल बने। ❑

(स्वतंत्र लेखक/ टिप्पणीकार)

बहुभाषिकता और हिन्दी

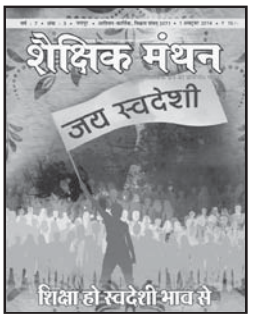

आज अंग्रेजी हमारी बौद्धिक क्षमता है। हम इसे इसलिए नहीं खोना चाहेंगे कि यह एक औपनिवेषिक स्मृतिचिन्ह है। किन्तु अंग्रेजी जितनी हमारी आवश्यकता है, उससे अधिक हम जानते हैं। भारत सही अर्थों में वैश्विक क्षमताओं वाला राष्ट्र बने, इसके लिए हमें विश्वसंस्कृतियों से सीधा जुड़ना होगा। यह काम हम जितनी तेजी से करेंगे, उतनी ही हम अपने आर्थिक व सामाजिक विकास को गति दे पाएंगे। शिक्षा और सूचना-तकनीकी किसी भी राष्ट्र के आर्थिक समृद्धि और सुरक्षा का एकमात्र औजार है। अंग्रेजी के ऊपर एकमात्र निर्भरता से हमारा यह उद्देश्य पूरा नहीं होता। जो लोग सोचते हैं कि भारत की एक अरब से अधिक जनसंख्या को अंग्रेजी में शिक्षित कर हम उन्हें उच्च शिक्षा और उच्च रोजगार के अवसर दे पाएंगे, यह एक दिवास्वप्न है।

❑ डॉ. सुरेन्द्र भटनागर

भाषा, स्वतंत्रता है। भाषा, ज्ञान के घर का द्वार है। व्यक्ति का भाषाक्षेत्र जितना सीमित होता है- उतना ही उसका दृष्टिक्षेत्र। भाषा, संवाद का माध्यम है। अगर कोई व्यक्ति किसी नई जगह जाता है और वह उस स्थान की भाषा नहीं जानता, तो वह स्वयं को भाषा के बन्दीगृह में पाता है- पूरा सम्पर्कहीन। वेदों के समय शिक्षा का अर्थ ही भाषा था। शिक्षा व्याकरण का नाम था। बहुभाषिकता के आधार पर ही भारत अपना ज्ञान-वर्चस्व फिर प्राप्त कर सकता है। आज अंग्रेजी राजसत्ता का सूर्य डूब चुका है, किन्तु जिन देशों में अंग्रेजी भाषा रही वहां आज भी उसका वर्चस्व बना हुआ है। आज से 70 वर्ष पहले जर्मन भाषा का ज्ञान के क्षेत्र मे दुनिया में दबदबा था। ज्ञान विज्ञान के केन्द्र जर्मनी के विश्वविद्यालय थे। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अंग्रेजी भाषा का एक मात्र वर्चस्व बढ़ा। इसका कारण अमेरिका का आर्थिक एवं राजनैतिक वर्चस्व था। यह मात्र 70 साल का समय था। हिंदी को भी अपने प्रसार के लिए समयबद्ध कार्यक्रम बनाना चाहिए। भारत की आजादी को भी लगभग इतना ही समय हुआ है, किन्तु इस थोड़े समय में अंग्रेजों के जाने के बाद अंग्रेजी भाषा, भारत के शिक्षा जगत में तेजी से बढ़ी। जैसे एक समय 'फारसी', पढ़े लिखों की भाषा थी। उस समय कहावत थी, पढ़े फारसी बेचें तेल, यह देखो किस्मत का खेल। आज की कहावत है- अंग्रेज गए, अंग्रेजी छोड़ गए। बात अंग्रेजी की नहीं, अंग्रेजियत की है। ये बात नीति की नहीं, बिगड़ी हुई नीयत की है। भारत की भाषाएं एक समय उसके भूगोल की परिभाषाएं थीं। उसके भविष्य की आषाएं थीं। पर आज अंग्रेजी के लिए पूरा देश क्रेजी है। आज भारत के खून में अंग्रेजी का जुनून है। यह देश के लिए चिन्ताजनक है। एक स्वतंत्र देश भाषाई बन्धक जैसा व्यवहार करे यह उसकी अस्मिता का अपमान है।

पर यह स्थिति तब तक रहेगी, जब तक दुनिया में भारत की राजनैतिक हैसियत और आर्थिक वर्चस्व नहीं बढ़ता। भगवान कृष्ण ने गीता अर्जुन को ही दी थी, शिखण्डी को नहीं। संकल्प से बड़ा कोई विकल्प नहीं होता। दबाव सहने वाले राष्ट्र की दबाव में रहने की आदत हो जाती है। वह उसका स्वाभाव बन जाता है। 200 साल की गुलामी ने भारत को एक सहनशील मजदूर बना दिया है- जो दुनिया की आर्थिक महाशक्तियों के हितों के लिए तकनीकी कुलियों जैसा काम करे। उसमें शासकों का स्वभाव समाप्त हो गया है। ढर्रे और ढांचे के कचरा बनने की जगह भारत को स्वतंत्र रूप से सोचना होगा।

आज भारत के अंग्रेजी समाचार पत्रों की बात न भी करें तो भारत के हिंदी समाचार पत्र भी हिंग्लोमैनिया की बीमारी से ग्रस्त हैं। भारत में अंग्रेजी माध्यम के स्कूल दिन दूनी रफ्तार से बढ़ रहे हैं- और साथ ही भारत में हिंदी के अखबारों में जो युवकों के पृष्ठ होते हैं, उनमें कुछ की भाषा के नमूने में आज यहां के अखबारों से छांट कर दे रहा हूँ, इन्हें देखें। 'दस साल में बनाया 100 करोड़ के टर्न ओवर वाला फैशन ब्रांड' 'हैल्दी ईटिंग का मैसेज देने के लिए फनी वीडियों में नजर आई मिशेल'। अथवा 'यह ऑफिस विभिन्न फैशन डिजाइन के मॉडल्स और पेंटिग्ज से सजा है'। हिंदी के एक प्रतिष्ठित समाचारपत्र के वाक्यांश हैं। हर पत्र का यही हाल है। हिंदी प्रदेशों के राजनेता हिंदी दिवस पर मन छूने वाले भाषण देते हैं किन्तु यदि वे सचमुच हिंदी के लिए मन से कुछ करना चाहते हैं- तो उन्हें अंग्रेजी अखबारों में विज्ञापन देना बन्द करना चाहिए। हिंदी माध्यम से

पढ़े छात्रों को नौकरियों में वरीयता देना चाहिए और हिंदी प्रदेशों के बाजारों से अंग्रेजी हटा देना चाहिए। कम से कम हम तीन ऐसे विश्वविद्यालय खोलें जिनमें अंग्रेजी की जगह दुनिया में किसी अन्य देश की, जो हमारे लिए राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो, भाषा पढ़ाई जाए।

जहाँ तक हिंदी के भारतीय भाषाओं से सम्बन्ध का प्रश्न है। हिंदी प्रदेशों के सभी विश्वविद्यालयों में अहिंदीभाषी राज्यों की भाषाएं पढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिए। यह काम पारस्परिकता के आधार पर हो सकता है। साथ ही हिंदीभाषी विश्वविद्यालयों को भारत के सीमान्त प्रदेशों की भाषाएं पूर्वापरता से भाषा-संकायों में पढ़ानी चाहिए।

यदि हमें अंग्रेजी का एकमात्र वर्चस्व कम करना है और देश को बहुभाषिक अंतर-सांस्कृतिक देश बनाना है तो हमें देश के प्रत्येक राज्य में एक अन्तर्राष्ट्रीय विदेशी-भाषा-विश्वविद्यालय खोलना होगा, इस विश्वविद्यालय में सम्पूर्ण पठन अंग्रेजी के स्थान पर किसी महत्वपूर्ण विदेशी भाषा में और इसके साथ ही प्रान्तीय भाषा में हो सकता है। इस प्रकार भारत दुनिया की अनेकों भाषाओं और संस्कृतियों से सीधा जुड़ेगा तथा उसकी अंग्रेजी पर एकमात्र निर्भरता कम हो जाएगी और भारतीय भाषाओं का महत्व बढ़ेगा।

आज अंग्रेजी हमारी बौद्धिक क्षमता है। हम इसे इसलिए नहीं खोना चाहेंगे कि यह एक औपनिवेषिक स्मृतिचिन्ह है। किन्तु अंग्रेजी जितनी हमारी आवश्यकता है, उससे अधिक हम जानते हैं। भारत सही अर्थों में वैश्विक क्षमताओं वाला राष्ट्र बने, इसके लिए हमें विश्वसंस्कृतियों से सीधा जुड़ना होगा। यह काम हम जितनी तेजी से करेंगे, उतनी ही हम अपने आर्थिक व सामाजिक विकास को गति दे पाएंगे। शिक्षा और सूचना-तकनीकी किसी भी राष्ट्र के आर्थिक समृद्धि और सुरक्षा का एकमात्र औजार है। अंग्रेजी के ऊपर एकमात्र निर्भरता से हमारा यह उद्देश्य पूरा नहीं होता। जो लोग सोचते हैं कि भारत की एक अरब से अधिक जनसंख्या को अंग्रेजी में शिक्षित कर हम उन्हें उच्च शिक्षा और उच्च रोजगार के अवसर दे पाएंगे, यह एक दिवास्वप्न है। एक बालक को स्वाभाविक शिक्षा मातृभाषा में ही दी जा सकती है, इस बात को दुहराने की आवश्यकता नहीं, इसलिए हम यह भी नहीं चाहेंगे कि हिंदी भारत की अन्य मातृभाषाओं की जगह ले। भाषाई विविधता भारत की सांस्कृतिक विविधता है, यह हमारे लिए गर्व की बात है, संस्कृतियों का अपना अपना चरित्र होता है और हमें इस सत्य को ही समझकर अपनी शिक्षा और संस्कृतियों की नीतियों का निर्माण करना चाहिएं। बहुभाषिकता सांस्कृतिक सम्पन्नता का प्रत्यय है, सभ्यताएं जितनी पुरानी होती हैं, उनमें भाषाई विविधता का स्वाभाविक गुण होता है। हमें इस विविधता से उत्पन्न सांस्कृतिक उत्पादों की सुरक्षा करना चाहिए। ❑

(प्रभारी-भारत विद्या अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र, अटल बिहारी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल)

प्राथमिक स्तर पर दाखिलों में गिरावट

शिक्षा के प्रसार के सरकार के प्रयासों के बीच पिछले चार वर्ष में प्राथमिक शिक्षा स्तर पर छात्रों के दाखिले में गिरावट आई है, वहीं उच्च प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर दाखिले का स्तर बढ़ा है। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर बच्चों के बीच में पढ़ाई छोड़ने की औसत दर पिछले चार वर्ष में 9.1 प्रतिशत से घटकर 4.7 प्रतिशत हो गई है। शिक्षा का अधिकार, रिपोर्ट 2014 के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर 2009-10 में 13.34 करोड़ छात्रों के दाखिले हुए थे जो 2013-14 में घटकर 13.24 करोड़ हो गए। वहीं उच्च प्राथमिक स्तर पर 2009-10 में 5.44 करोड़ छात्रों के दाखिले हुए थे जो 2013-14 में बढ़कर 6.64 करोड़ हो गए। 2009-10 में प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर बच्चों के बीच में पढाई छोड़ने की औसत दर 9.1 प्रतिशत थी जो 2013-14 में घटकर 4.7 प्रतिशत दर्ज की गई।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आंकड़ों के मुताबिक, 2009-10 में प्रारंभिक शिक्षा से जुड़े सरकारी एवं सहायता प्राप्त स्कूलों की संख्या 11,20,968 थी जो 2013-14 में बढ़कर 11,61,789 हो गई। 2009-10 में 93 प्रतिशत स्कूल पेयजल सुविधा सम्पन्न थे जो 2013-14 में बढ़कर 95 प्रतिशत दर्ज की गई। 2009-10 में 59 प्रतिशत स्कूलों में लड़कियों के लिए शौचालय की व्यवस्था थी जबकि 2013-14 में 85 प्रतिशत स्कूलों में लड़कियों के लिए अलग शौचालय की सुविधा थी। 2009-10 में 51 प्रतिशत स्कूलों में चारदीवारी थी 2013-14 में बढ़कर 62 प्रतिशत हो गई। 2009-10 में 51 प्रतिशत स्कूलों में खेल का मैदान था जो 2013-14 में बढ़कर 58 प्रतिशत हो गया। 2009-10 में 43 प्रतिशत स्कूलों में किचेन शेड की व्यवस्था थी जो 2013-14 में बढ़कर 75 प्रतिशत दर्ज की गई।

मंत्रालय के आंकड़ों के मुताबिक, देश में अभी भी शिक्षकों के साढे पांच लाख रिक्त पदों में करीब आधे बिहार एवं उत्तर प्रदेश में है। पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, झारखंड, महाराष्ट्र समेत कई अन्य राज्यों में भी स्कूलों में शिक्षकों की भारी कमी का सामना करना पड़ रहा है। सर्व शिक्षा अभियान के तहत देश के विभिन्न प्रदेशों में शिक्षकों के 19.84 लाख रिक्त पदों को भरने का के लक्ष्य में से पिछले वर्ष सितम्बर माह तक 14.34 लाख पदों को ही भरा जा सका अर्थात करीब साढे पांच लाख शिक्षक पदों को अभी भरा जाना शेष है। पिछले वर्ष 30 सितम्बर तक बिहार में वित्त वर्ष 2013-14 तक के लक्ष्य का 50 प्रतिशत हासिल किया जा सका था जबकि गुजरात में 53 प्रतिशत, दिल्ली में 54 प्रतिशत, झारखंड में 67 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल और उत्तरप्रदेश में 69 प्रतिशत कार्य पूरा किया जा सका। नई कक्षाओं का निर्माण किया गया है लेकिन स्कूलों में पढ़ने वाले 59.67 प्रतिशत बच्चों के समक्ष छात्र, शिक्षक अनुपात की समस्या है।

प्रारंभिक शिक्षा से जुड़े सरकारी एवं सहायता प्राप्त स्कूल पूर्व की स्थिति 11,20,968 मौजूदा स्थिति 11,61,789 पेयजल सुविधा सम्पन्न स्कूल 93 प्रतिशत 59 प्रतिशत 95 प्रतिशत 85 प्रतिशत 51 प्रतिशत 51 प्रतिशत 62 प्रतिशत 58 प्रतिशत 43 प्रतिशत 75 प्रतिशत स्कूलों में चारदीवारी खेल का मैदान किचेन शेड लड़कियों के लिए शौचालय की व्यवस्था (2009-10 और 2013-14 की तुलना) उच्च प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर दाखिले का स्तर बढ़ा देश में अब भी शिक्षकों के साढ़े पांच लाख पद रिक्त।

विदेशी शिक्षा की सार्थकता का सवाल

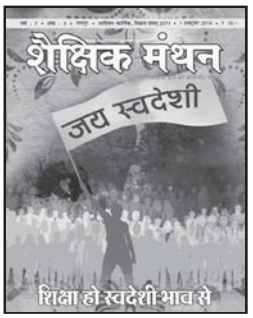

वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक बड़े मुकाम की तरफ बढ़ रहा देश उच्च शिक्षा के मामले में खिड़की दरवाजे बंद कर के नहीं बैठ सकता। आईटी, मेडिकल और इंजीनियरिंग के क्षेत्र की ग्लोबल चुनौतियों के हिसाब से अपने छात्रों को तैयार करने में विदेशी संस्थानों के देश में स्थित कैंपस काफी मददगार हो सकते हैं। लेकिन इनके लिए ऐसे कायदे-कानून जरूर बनाने होंगे जिससे विदेशी विश्वविद्यालयों के भारत में कायम किए जाने वाले कैंपसों के कामकाज की लगातार निगरानी हो सके और वे हमारे छात्रों का आर्थिक शोषण न कर सकें।

❑ **अभिषेक कुमार सिंह**

लगातार महंगी होती शिक्षा की समस्याओं के बीच एक अजीब विरोधाभासी तथ्य अक्सर देखने को मिलता है कि हमारे देश में तमाम अभिभावक अपने बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए उन विदेशी संस्थानों में पढ़ने के लिए भेजते हैं जहां पढ़ाई भारत के मुकाबले आठ से दस गुना तक महंगी है। विदेशी शिक्षा महंगी है और उसके मुकाबले देसी शिक्षा बेहद सस्ती, यह बात हाल में एक अंतरराष्ट्रीय बैंक (एचएसबीसी) द्वारा कराए गए सर्वेक्षण 'द वैल्यू ऑफ एजूकेशन, स्प्रिंगबोर्ड फॉर सक्सेस' से साबित हुई है। इसके मुताबिक, अंडरग्रेजुएट कोर्स के लिए भारत में बाहर से पढ़ने आए छात्र का विश्वविद्यालय फीस और रहने-खाने का सालाना औसत खर्च 5643 डॉलर है जिसमें से महज 581 डॉलर फीस के रूप में चुकाए जाते हैं। इसके बरक्स, ऑस्ट्रेलिया में यह खर्च 42093 डॉलर, सिंगापुर में 39229 डॉलर, अमेरिका में 36565 डॉलर और ब्रिटेन में 35045 डॉलर सालाना होता है। पंद्रह देशों में 4500 अभिभावकों पर किए गए सर्वेक्षण में यह बात भी सामने आई कि भारत में भले ही सबसे सस्ती उच्च शिक्षा मिल रही हो, लेकिन ज्यादातर भारतीय अभिभावक भी (62 प्रतिशत) अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा के लिए ऑस्ट्रेलिया, सिंगापुर और अमेरिका भेजने को अहमियत देते हैं। वे ऐसा क्यों करते हैं, इसका एक जवाब हाल ही में ब्रिटिश कंपनी क्यूएस द्वारा प्रकाशित की गई वर्ल्ड विश्वविद्यालय रैंकिंग से मिल जाता है जिसमें पहले 200 विश्वविद्यालयों में एक भी भारतीय नहीं है। इस सूची में आईआईटी- मुंबई का स्थान 222वां है जबकि आईआईटी, दिल्ली 235वें नंबर पर है। प्रतिष्ठित दिल्ली विश्वविद्यालय अध्ययन-अध्यापन के मामले में 420-430 के बीच आया है। हालांकि यह रैंकिंग जारी करने वाली कंपनी क्यूएस के रिसर्च प्रमुख बेन सॉटर मानते हैं कि भारतीय विश्वविद्यालयों का स्तर उठाने के प्रयास हो रहे हैं लेकिन फिलहाल वे नाकाफी है।

देश में फिलहाल 225 से अधिक छोटे-बड़े विश्वविद्यालय हैं और उनसे संबंधित कॉलेजों की संख्या भी हजारों में है, लेकिन यह हैरानी का

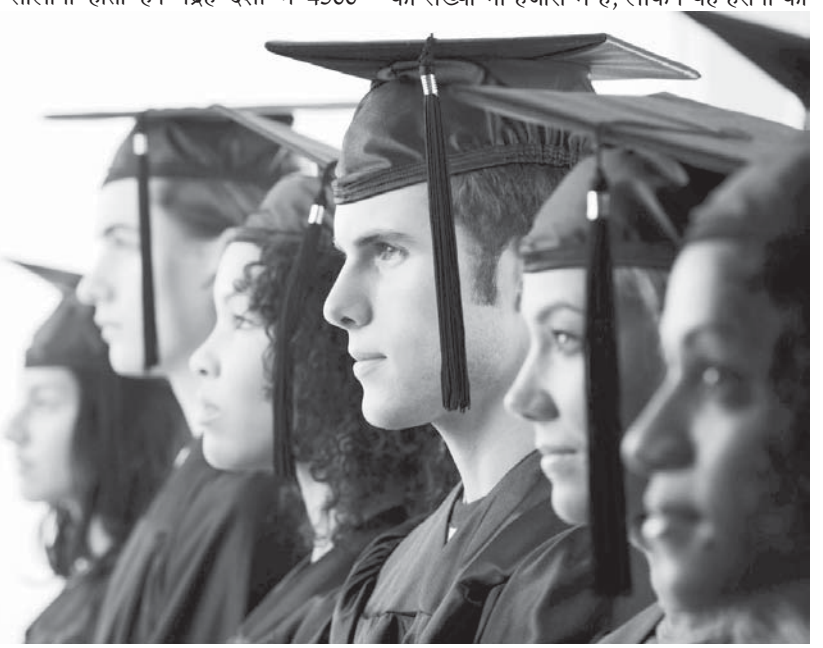

विषय है कि इनमें से कोई भी विश्वविद्यालय उस स्तर की शिक्षा नहीं दे पा रही है कि उसे दुनिया की अव्वल सौ विश्वविद्यालय में शामिल किया जा सके। उल्लेखनीय है कि विदेशी विश्वविद्यालयों की उच्च स्तरीय शिक्षा पाने के लिए हर साल भारत से डेढ़ से पौने दो लाख छात्र विदेश जाते हैं। देश के लिए आर्थिक नजरिए से भी जरूरी है कि छात्रों को भारतीय विश्वविद्यालय ही कायदे की शिक्षा देने का इंतजाम करें, अन्यथा देश में ही विदेशी विश्वविद्यालयों के कैंपस खुलें जिनके जरिये विदेशी डिग्री पाने का सपना थोड़े सस्ते में पूरा हो सके। जब देश में ही विदेशी संस्थानों के कैंपस मौजूद होंगे, तो इससे विदेशी शिक्षा पर किए जाने वाले खर्च में कटौती से लेकर वे सारे फायदे हो सकेंगे जिनके लिए विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत लाने की वकालत होती रही है। हाल के वर्षों में खास तौर से ऑस्ट्रेलिया में भारतीय छात्रों के साथ पेश आए हादसों के मद्देनजर भी यह एक बड़ी राहत होगी। इससे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ने की भी संभावना है जिससे निश्चित ही देश में उच्च शिक्षा का माहौल काफी सुधरेगा। पर विदेशी विश्वविद्यालयों का रुख करने और उन्हें अपने देश में कैंपस खोलने के लिए न्यौतने से पहले यह देखना भी जरूरी है कि आखिर विदेशी शिक्षा में ऐसा क्या है, जो दुनिया भर के छात्र अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया की ओर खिंचे चले जाते हैं और जिसके बल पर वहां एक शानदार एजुकेशन इंडस्ट्री बन गई हैं।

इसका एक उदाहरण अमेरिकी शिक्षा व्यवस्था से लिया जा सकता है। अमेरिका में कानून और चिकित्सा, दो ऐसे पेशे हैं जिनमें भरपूर कमाई की संभावना रहती है। वहां कानून की मुकम्मल पढ़ाई में 7.8 साल लग जाते हैं और मेडिकल की पढ़ाई कर डॉक्टर बनने के लिए 11 साल लगते हैं और इसमें भारतीय मुद्रा के हिसाब से एक से डेढ़ करोड़ रुपए का खर्च होता है। इन दोनों पाठ्यक्रमों के लिए येल, हार्वर्ड और स्टैनफोर्ड की गणना सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय में होती है। लेकिन इतनी महंगी शिक्षा के बावजूद वहां ऐसा नहीं है कि अभिभावक अपने बेटे या बेटी को पढ़ाने के लिए अपना घर-बार अथवा कारोबार दांव पर लगा दें। इसके लिए वहां आसानी से कम ब्याज दरों पर कर्ज मिल जाता है। मेडिकल और कानून की डिग्रियों के अलावा वहां ऐसी अनगिनत डिग्रियां और पाठ्यक्रम हैं जिनके जरिये एक अच्छा रोजगार पाया जा सकता है। लेकिन वहां बात सिर्फ उच्च शिक्षा की क्वालिटी की नहीं होती है। अमेरिका में बच्चों की स्कूली शिक्षा की नींव को भी काफी मजबूत बनाया जाता है। प्राइमरी से लेकर हाईस्कूल तक की शिक्षा मुफ्त होती है। हालांकि सरकारी स्कूलों के साथ-साथ वहां भी प्राइवेट स्कूल हैं जो अपेक्षाकृत महंगे होते हैं, लेकिन ऐसा नहीं कि सरकारी स्कूल से निकला बच्चा प्राइवेट स्कूल के बच्चे से किसी मामले में उन्नीस साबित हो। इसके आगे वहां कॉलेज स्तर की जो शिक्षा है, वह भारतीय उच्च शिक्षा से इस मामले में अलग है कि वहां उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य पूरी तरह व्यावसायिक होता है। अमेरिका में शिक्षा का मकसद भारत की तरह मात्र डिग्रियों की संख्या बढ़ाना नहीं होता, बल्कि उस पढ़ाई के जरिये छात्रों को रोजगार के लायक बनाना होता है। इसलिए उनके पाठ्यक्रम भी उसी तरह से तैयार किए जाते हैं। इसके लिए अमेरिका में प्राइवेट और पब्लिक, दोनों ही तरह के विश्वविद्यालय कॉलेज हैं। छात्र दो वर्षीय अथवा चार वर्षीय ग्रेजुएशन कोर्स के चयन में पूरी तरह स्वतंत्र होते हैं। वहां ऑनलाइन गाइडेंस के लिए भी अनेक कंपनियां हैं जो किसी पाठ्यक्रम के महत्व और रोजगार की स्थिति का आकलन करती हैं। पब्लिक और प्राइवेट, दोनों ही तरह के विश्वविद्यालय-कॉलेजों में ग्रेजुएशन कोर्सेज की इतनी भरमार होती है कि छात्र अपनी शिक्षा, रुचि और आर्थिक क्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम चुन सकते हैं। वैश्विक पैमानों पर आम तौर पर एक शानदार विश्वविद्यालय की पहचान उसकी फीस और संकाय को मिलने वाले वेतनमान से की जाती है। यह भी ध्यान रखना होगा कि अब अमेरिका, सिंगापुर और ऑस्ट्रेलिया में उच्च शिक्षा एक उद्योग का रूप ले चुकी है। चीन और भारत से करीब चार-पांच लाख युवा हर साल यहां उच्च शिक्षा के लिए पहुंचते हैं। इससे अकेले अमेरिका को ही सालाना 25.30 अरब डॉलर की कमाई हो जाती है। इसके उलट भारत में सरकारी मदद के भरोसे चल रहे आईआईटी अथवा आईआईएम या मेडिकल कालेज ढांचागत सुविधाओं में अपेक्षित सुधार करने की बजाय न्यूनतम सुविधाओं और सामान्य वेतनमान पर न्यूनतम संकाय से काम चलाने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। बहरहाल, अमेरिकी शिक्षा के उदाहरण को ही मानक के तौर से लिया जाए, तो साफ है कि इस तरह की शिक्षा की भारत में कितनी अधिक जरूरत है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक बड़े मुकाम की तरफ बढ़ रहा देश उच्च शिक्षा के मामले में खिड़की दरवाजे बंद करके नहीं बैठ सकता। आईटी, मेडिकल और इंजीनियरिंग के क्षेत्र की ग्लोबल चुनौतियों के हिसाब से अपने छात्रों को तैयार करने में विदेशी संस्थानों के देश में स्थित कैंपस काफी मददगार हो सकते हैं। लेकिन इनके लिए ऐसे कायदे-कानून जरूर बनाने होंगे जिससे विदेशी विश्वविद्यालयों के भारत में कायम किए जाने वाले कैंपसों के कामकाज की लगातार निगरानी हो सके और वे हमारे छात्रों का आर्थिक शोषण न कर सकें। ❑

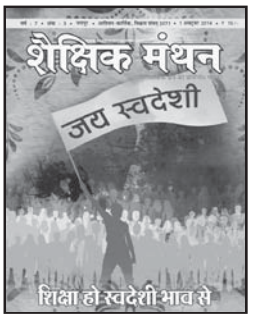

शिक्षक जैसा आचरण करता है बच्चा भी उसका अनुकरण करता है। इतना ही नहीं बच्चे उनका मूल्यांकन भी करते हैं। शिक्षक के अच्छे आचरण का उसके व्यक्तित्व विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आज विद्यालय व्यावसायिक हो गए हैं। शिक्षक भी उसी भूमिका में आ गया है। वह भी ट्यूशन, कोचिंग करने लगा है बच्चे से उसे कुछ लेना देना नहीं है। पहले शिक्षक बच्चे का पूरा ख्याल रखते थे। एक परिचित शिक्षिका हैं। उन्होंने अपनी शिक्षण यात्रा नर्सरी विद्यालय से शुरू की है। जब वह नर्सरी विद्यालय में पढ़ाती थीं तो एक छोटा बच्चा अपने से टिफिन नहीं करता था। यह उसे अपने हाथ से खिलाती थीं। वह बच्चा उन्हें बहुत प्यार करता था। जब उसने विद्यालय को छोड़ा तो बहुत दिनों तक उस बच्चे को याद करती रहीं। अच्छे शिक्षक जीवन पर्यन्त याद रहते हैं।

चरित्र निर्माण में शिक्षक की भूमिका

❑ **डॉ.जगदीश सिंह दीक्षित**

शिक्षक बच्चों के व्यक्तित्व विकास के मुख्य अभिकर्ता के रूप में होता है। शिक्षक को अपने पहनावे का पूरा ख्याल रखना चाहिए । बच्चों के समक्ष ऐसा कदापि आचरण न करें जो सामाजिक मानको के विपरीत हो। समय से कक्षा में एवं विद्यालय में जाएँ। बच्चों की गलती को प्यार से काफी समझा बुझाकर दूर करने का प्रयास करना चाहिए । हमेशा कुछ बोध कथा के माध्यम से उनके अंदर सद्गुणों का विकास करना चाहिए। बच्चा डाँटने-डपटने से और बिगड़ता है।

व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन होता है। जैसे-जैसे बच्चे की आयु बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उसके व्यक्तित्व में भी परिवर्तन होता जाता है। क्योंकि बच्चे के व्यक्तित्व विकास को प्रमुख रूप से अनुवांशिक, वातावरण सम्बन्धी, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक कारक किसी न किसी रूप में महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं। अधिगम एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक या प्रक्रिया है जो बच्चे के व्यक्तित्व विकास को अति महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है। बच्चे में प्रमुख रूप से अवलोकन, अनुकरण, तादत्मीकरण की प्रक्रिया चलती है। इन प्रक्रियाओं के द्वारा बच्चा अनेक प्रकार के सामाजिक गुणों एवं व्यवहारों को अधिगमित करता है। बच्चा जब पैदा होता है तब से सबसे अधिक वह अपने माता-पिता या फिर जो भी उनका पालन पोषण करता है उनके व्यवहारों का अवलोकन करता है और उनका अनुकरण कर उसे अधिगमित कर लेता है। इसके अलावा परिवार के अन्य सदस्य, भाई-बहन, दादा-दादी प्रमुख रूप से बच्चे के व्यक्तित्व विकास में सहायक होते हैं। बच्चा जब घर परिवार से बाहर निकलने लगता है तब उसकी मित्र मण्डली बनती है। अब जैसी उसकी मित्रमण्डली होगी वैसा ही उसमें सामाजिक विशेषताओं या गुणों का विकास होगा।

बच्चे के व्यक्तित्व विकास में परिवार, मित्रमण्डली के अलावा शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा के दौरान जितने भी शिक्षक होते हैं उनके व्यक्तित्व का बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर भी प्रभाव पड़ता है। इसमें भी प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों की तो अहम भूमिका होती है। शिक्षक का हाव-भाव उसकी भाषा, पढ़ाने की शैली, उसका पहनावा, आचार-विचार, समय से आने जाने का मन मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। बच्चा इन सब बातों को अपने

जीवन में उतारता है। छोटे बच्चे हों या बड़े कक्षा में यदि अपनी किसी बात को लेकर जिज्ञासा प्रकट करते हैं तो एक अच्छे शिक्षक का यह गुण होना चाहिए कि वह उसकी जिज्ञासा को शांत करें अर्थात् उसके प्रश्न का सौम्य तरीके से उत्तर दें। कुछ मैं सत्य उदाहरण देकर समझा रहा हूँ कि किस तरह से बच्चे अपने शिक्षकों के प्रत्येक आचरण का मूल्यांकन करते हैं। एक छोटा बच्चा प्रतिदिन अपना टिफिन लेकर जाता था। अपने से वह नहीं खाता था। उसके घर वालों ने शिक्षिकाओं को बता रखा था कि इसे जब भी टिफिन के लिए घण्टी बजे तो खिला दिया करना। वह शिक्षिका उस बच्चे को एक-दौ कौर खिलाती और शेष वह चट कर जाती थी। बच्चे ने घर आकर इस बात को अपने माँ से बताया कि फलाँ मैम मेरा नाश्ता खा जाती हैं। अब बताइए, वह बच्चा क्या सीखेगा। इसी तरह एक शिक्षक अक्सर कक्षा में पढ़ाने नहीं जाते थे। जब बच्चे उन्हें बुलाने जाते तो वह कक्षा में जाकर खूब डाँटते और फिर कक्षा में कभी नहीं जाते। संयोग से कहीं वे बारात में गये थे। वहाँ पढ़ाई-लिखाई की बात चल रही थी। एक पुरातन विद्यार्थी भी वहाँ आ गया और उन्हीं से पूछा कि सर जी आपके विद्यालय में एक अध्यापक थे वे अभी रिटायर हुए की नहीं। उन्होंने उससे पूछा कि क्यों? उसने कहा कि वह बड़ा घटिया अध्यापक थे। कभी कक्षा में पढ़ाने नहीं जाते थे। यह सुनकर उनका मुँह लटक गया।

कहने का तात्पर्य यह कि शिक्षक जैसा आचरण करता है बच्चा भी उसका अनुकरण करता है। इतना ही नहीं बच्चे उनका मूल्यांकन भी करते हैं। शिक्षक के अच्छे आचरण का उसके व्यक्तित्व विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आज विद्यालय व्यावसायिक हो गए हैं। शिक्षक भी उसी भूमिका में आ गया है। वह भी ट्यूशन, कोचिंग करने लगा है बच्चे से उसे कुछ लेना देना नहीं है। पहले शिक्षक बच्चे का पूरा ख्याल रखते थे। एक परिचित शिक्षिका हैं। उन्होंने अपनी शिक्षण यात्रा नर्सरी विद्यालय से शुरू की है। जब वह नर्सरी विद्यालय में पढ़ाती थीं तो एक छोटा बच्चा अपने से टिफिन नहीं करता था। यह उसे अपने हाथ से खिलाती थीं। वह बच्चा उन्हें बहुत प्यार करता था। जब उसने विद्यालय को छोड़ा तो बहुत दिनों तक उस बच्चे को याद करती रहीं। अच्छे शिक्षक जीवन पर्यन्त याद रहते हैं। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जो एक गुणी शिक्षक थे, उन्होंने तो अपने जन्मदिन को शिक्षक दिवस के रूप में मनाने के लिए समर्पित कर दिया। आज भी लोग 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस के रूप में मनाते हैं । शिक्षक, मार्गदर्शक के रूप में तो होता ही है वह बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण का मुख्य अभिकर्ता भी होता है। ❑

(एसोसिएट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, टी.डी.कालेज, जौनपुर, उ.प्र.)

UGC, Don't Stifle Teaching Innovation

The University Grants Commission (UGC) is needlessly pushing IITs to scrap their four-year undergraduate programmes (FYUP). Conformity with the UGC's national policy was used as the instrument to end Delhi University's misguided FYUP. Now, the UGC wants to straitjacket that national policy on the Indian Institutes of Technology, the Indian Institute of Science and some innovative private universities. This is a grave error. India needs reform in higher education to compete in an increasingly knowledge-intensive economy. Students graduating from our universities should have the ability to think out of the box and to innovate. All this calls for a change in culture including how courses are designed, and how institutions are run. The UGC should not be a stumbling block in nurturing innovation.

Rather, its policy framework should not just leave room for but also encourage innovation and experimentation.

UGC's fiat infringes on the autonomy of IITs that are governed by a separate Act of Parliament.

There is every reason for these institutions to experiment with varied programmes. The UGC and the government must encourage, rather than thwart, innovation in pedagogy. Centres of excellence such as the IITs and the IISc and small, private universities are ideal for carrying out such experiments. If found successful, these can then be deployed in larger universities across the country. An FYUP is a prerequisite for admission to the masters' programme in the US and some other foreign varsities.

If some Indian students want to pursue a four-year degree in preparation for a Master's abroad, why should the UGC stand in the way? The DU experiment was illconceived and rushed through without proper consultations with all stakeholders. The extra one year in the DU programme was devoted to 12 compulsory but substandard foundation courses. Not just poor course design. DU also lacked the capacity for additional seats to house the fourth batch of students. A flawed DU experiment should not throttle innovation elsewhere through the UGC. ❑

मोदी का 'गुरुमंत्र' और शिक्षक

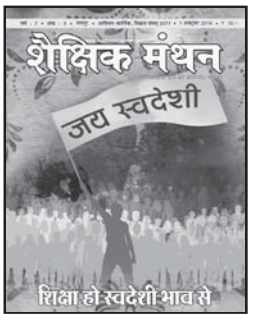

प्रधानमंत्री मोदी ने मात्रात्मक के स्थान पर गुणात्मक शिक्षा की व्यवस्था पर अधिक बल दिया। देश में 25000 सरकारी और प्राइवेट कॉलेज है इसके अलावा 187 निजी विश्वविद्यालय इस गुणात्मक शिक्षा के उद्देश्य को बरबाद कर रहे है। उनके द्वारा मोटी रकम के बदले आज की युवा पीढ़ी को फर्जी डिग्रियाँ बाँटी जा रही है। इससे शिक्षा की गुणात्मकता में गिरावट आई है, जिसके कारण डिग्रीधारी शिक्षकों की फौज खड़ी हो गई है। छात्रों के स्किल्स (हुनर) का भी कहीं न कहीं ह्रास हुआ है। प्रधानमंत्री जी ने अपने 'गुरुमंत्र' में कहा कि डिग्री के साथ स्किल का होना भी जरूरी है लेकिन इस स्किल को बढ़ावा कौन देगा?

❑ **प्रो. श्यामानन्द सिंह**

देश भर में भारत के द्वितीय राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के 126वें जन्म दिन को नया नाम 'गुरु पर्व' देकर नये कलेवर में 5 सितम्बर, 2014 को मनाया गया। जिसे 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाया जाता रहा है। 1962 से प्रतिवर्ष जारी इस कार्यक्रम में भारत के किसी प्रधानमंत्री ने पहली बार सम्पूर्ण देश के छात्रों और शिक्षकों को टेलिविजन के द्वारा सम्बोधित किया तथा उनके प्रश्नों के उत्तर भी दिये। राजनीतिक विचार भिन्नता के कारण कांग्रेस, तृणमूल और ए.आई.डी.एम.के. शासित राज्यों के लाखों छात्रों और शिक्षकों को प्रधानमंत्री के इस प्रेरक उद्‌बोधन से वंचित रखा गया। कई विवाद उठाये गये। किसी ने बच्चों और शिक्षकों को अपराह्न में भाषण सुनने के लिए 'बाध्य' किए जाने का विरोध किया तो किसी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से प्रेरित 'बौद्धिकता' का विरोध किया। किसी को भारतीय जनता पार्टी के हिन्दुत्व, हिन्दी राष्ट्रीयता का प्रचार सरकारी तंत्र से करवाने या 'मोदीवाद' की मानवतावादी छवि को गढ़ने का प्रयास नज़र आया। प्रधानमंत्री मोदी के हिन्दी में दिए गए भाषण को अन्य 13 भाषाओं में भी प्रसारित किया गया। विद्यालयों में शिक्षण कार्य के बाद अपराह्न में भाषण का समय निर्धारित होने के बाद भी छात्रों और शिक्षकों में उत्साह नज़र आया। इस वर्ष के प्रारम्भ से ही देशवासियों में लोकसभा चुनावों के प्रचार के दौरान और उसके बाद 'मोदी' के भाषणों को सुनने की ललक मौजूद है उसे 'गुरु पर्व' के दिन भी देखा गया। लेकिन प्रधानमंत्री द्वारा छात्रों के साथ किए गए संवादों में राजनीति, धर्म, सरकार के कार्य और महानता का बखान नहीं किया गया। सरल भाषा में छात्रों और शिक्षकों को सकारात्मक सोच का संदेश देते हुए समाज के अन्य प्रबुद्ध लोगों को भी शैक्षणिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विकास में बिजली, पानी, पर्यावरण की रक्षा करते हुए भागीदारी निभाने का आग्रह किया गया। प्रबुद्ध वर्ग यदि सप्ताह में सरकारी स्कूल में एक भी कक्षा लेंगे तो छात्रों का मनोबल बढ़ेगा और शिक्षकों पर अंकुश होगा। यद्यपि उन्होंने शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं को उजागर अवश्य किया तथापि समाधान का कोई मार्ग नहीं बताया और सम्भावित सरकारी पहल का उल्लेख भी नहीं किया।

उन्होंने छात्रों से संवाद के माध्यम से प्रेरणा, गम्भीरता और हास्य विनोद के द्वारा छात्रों की समस्या

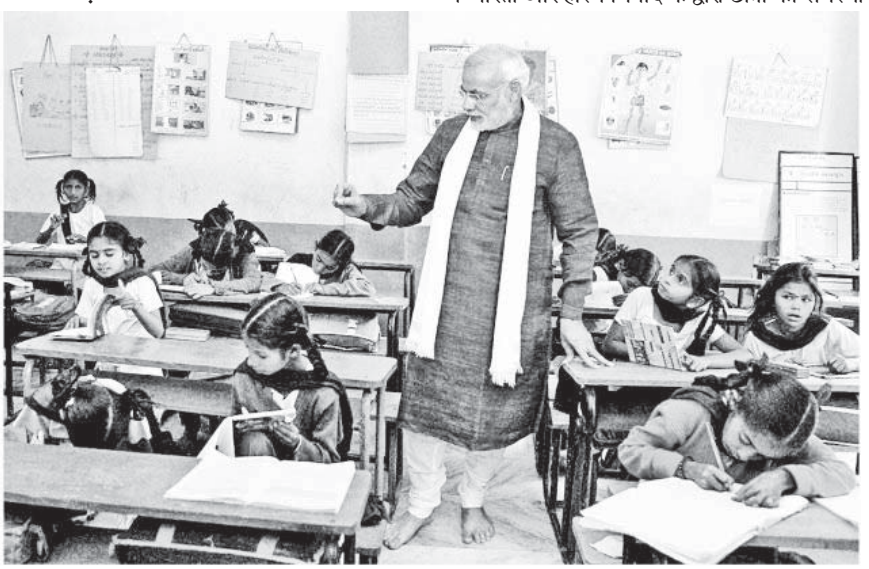

को उजागर किया है। तो उनके पास छात्रों को सुविधायें देने के लिए देश का भरपूर खजाना है। देश के ग्रामीण क्षेत्र के स्कूलों की सही स्थिति की जानकारी भी उन्हें 5 सितम्बर, 2014 को ही दी गयी होगी कि कितने स्कूलों में टेलिविजन, लेपटॉप, बिजली और शौचालय है या नहीं है। केवल कोरे 'शब्द-दान' से सरकारी विद्यालयों में इनका अभाव दूर नहीं होगा। देश में करीब 64 प्रतिशत प्राथमिक स्कूल में बिजली नहीं है। यही हाल रसोई-घर, शौचालय, कक्षा-कक्ष एवं खेल के मैदान का भी है। अत: जब तक बुनियादी सुविधाएँ नही दी जायेगी तब तक शिक्षा-व्यवस्था कैसे सुधरेगी? इन सुविधाओं के लिए 'धनदान' अर्थात् बजट उपलब्ध करवाने की महती आवश्यकता है। जिससे कि अगले वर्ष 'गुरु पर्व' को अधिक उत्साह से पूरे देश में मनाया जा सके। साथ ही इसके आयोजन के लिए स्कूल का खेल और पुस्तकालय का बजट भी खर्च नहीं किया जाये और स्कूल के शिक्षकगणों को छात्रों और उनके अभिभावकों से इस आयोजन के लिए चन्दा मांगने की विवशता भी न रहे। मानव संसाधन मंत्री स्मृति ईरानी को भी राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पादन का 6 प्रतिशत धन शिक्षा पर खर्च करने के लिए मिले, तब ही 'गुरु पर्व' को सार्थक बनाया जा सकता है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने छात्रों को अच्छे जीवन और राष्ट्र सेवा का मंत्र देते हुए कहा कि वे पाठ्य-पुस्तकों के अलावा दूसरी किताबों से भी ज्ञान अर्जित करें और खूब खेलकूद और मस्ती भी करें, जिससे उनके शरीर से पसीना निकलें। उन्होंने कहा कि पढ़ाई, खेलकूद, स्वच्छता, अनुशासन और चरित्र निर्माण पर ध्यान देकर सभी छात्र राष्ट्र के विकास में अपना योगदान कर सकते हैं। 'मोदी' ने आगे शिक्षक छात्र-सम्बंध, समाज का विद्यालय में योगदान, अच्छे शिक्षकों और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अच्छे शिक्षकों की माँग की बात भी कही। भारत से अच्छे शिक्षक विदेशों में जाएं। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि अच्छे शिक्षक बनेंगे कहाँ से? देश के अधिकतर 'शिक्षक' प्रशिक्षण महाविद्यालय जो बी.एड. एवं एम.एड. की डिग्री प्रदान करवाते हैं, कागजों पर चलते हैं। प्रशिक्षणार्थियों को पढ़ाने के लिए शिक्षक नहीं होते हैं और शिक्षण के लिए छात्र नहीं। अभ्यास के लैब और लाइब्रेरी भी नहीं है। सरकारी संस्थानों में चाहे स्कूल हो, कॉलेज हो या विश्वविद्यालय, योग्यताधारी व्यक्ति नियुक्ति से वंचित रहते हैं और अयोग्य अभ्यर्थी सिफारिश और पैसे के बल पर नियुक्त हो जाते हैं। ऐसे शिक्षकों से छात्रों का क्या भला होगा? प्राय: सभी राज्यों में शिक्षकों के पदस्थापन और स्थानान्तरण का काला कारोबार जारी है। प्रधानमंत्री जी चाहे तो इसे रुकवा ही सकते हैं। जिसमें मंत्री-विधायक की अनुशंसा धन के लेन-देन पर ही निर्भर करती है। शिक्षा में भ्रष्टाचार रुके शिक्षक शिक्षण कार्य हेतु पाबन्द हो और सरकारी स्कूलों में भी सभी सुविधाएँ उपलब्ध हो। इसमें ही 'मोदी मंत्र' की सार्थकता है।

देश में 40 प्रतिशत स्कूल निजि है उनमें 4 हजार रुपये या उससे कम मासिक वेतन पर एम.ए., बी.एड. शिक्षक पढ़ाते है। सरकारी स्कूलों में भी अस्थाई शिक्षक को 4 से 5 हजार मासिक वेतन दिया जाता है। देश में करीब 5 लाख अस्थाई शिक्षक वर्षों से पढ़ा रहे हैं। इसके विपरीत जिन सरकारी शिक्षकों को मोटी रकम वेतन के रूप में मिलती है वे पढ़ाते नहीं है और जो अस्थायी शिक्षक पढ़ाते हैं उन्हें मजदूरों से भी कम वेतन दिया जा रहा है। अत: शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए शिक्षकों की स्थिति में भी सुधार अपेक्षित है तब ही छात्र योग्य बन सकेंगे तथा आगे जाकर वे कुशल शिक्षक बनेंगे। कुशल शिक्षक ही छात्रों की प्रतिभा को पहचान कर उसे निखारने का काम करते हैं तब ही समाज और देश का विकास हो सकता है।

प्रधानमंत्री मोदी ने मात्रात्मक के स्थान पर गुणात्मक शिक्षा की व्यवस्था पर अधिक बल दिया। देश में 25000 सरकारी और प्राइवेट कॉलेज है इसके अलावा 187 निजी विश्वविद्यालय इस गुणात्मक शिक्षा के उद्देश्य को बरबाद कर रहे है। उनके द्वारा मोटी रकम के बदले आज की युवा पीढ़ी को फर्जी डिग्रियाँ बाँटी जा रही है। इससे शिक्षा की गुणात्मकता में गिरावट आई है, जिसके कारण डिग्रीधारी शिक्षकों की फौज खड़ी हो गई है। छात्रों के स्किल्स (हुनर) का भी कहीं न कहीं ह्रास हुआ है। प्रधानमंत्री जी ने अपने 'गुरुमंत्र' में कहा कि डिग्री के साथ स्किल का होना भी जरूरी है लेकिन इस स्किल को बढ़ावा कौन देगा? क्या मानव संसाधन मंत्रालय का यह दायित्व नहीं बनता है कि वह विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए अनुमति प्रदान करने वाली संस्था (UGC अथवा AICTE) जो शिक्षकों की योग्यता और पाठ्यक्रम (Syllabus) का निर्धारण करती है इसे सही तरह से नियंत्रित करें। अच्छे शिक्षण और प्रशिक्षण से ही एक अच्छा और कुशल शिक्षक बनता है।

यदि प्रधानमंत्री निजी शिक्षण संस्थानों पर नकेल कसते हुए सरकारी संस्थानों में कार्यप्रणाली को बेहतर करते हुए सुविधाएँ बढ़ाते है तो 'शिक्षा' में सुधार अवश्य हो सकता है। आज के तकनीकी युग में कदम-से-कदम मिलाकर चले तो सार्थक होगा। जहाँ केवल डिग्री बाँटने का काम ही न हो अपितु उसमें डिग्री के लिए आवश्यक कौशल का विकास भी सम्भव हो, अत: इसकी पहल कहीं-कहीं मानव संसाधन मंत्रालय को करनी होगी तब ही शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाया जा सकता है। ❑

(विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग एवं डीन सामाजिक विज्ञान संकाय, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय अजमेर)

शिक्षा, सरकार की सौतेली सन्तान

❑ चन्द्र मोहन

शिक्षक दिवस पर मोदी 'सर'का बच्चों को सम्बोधन असामान्य तौर पर सफल रहा। कुछ विपक्षी प्रदेशों में प्रसारण सुनने भी नहीं दिया गया। यह बचकाना हरकत है। प्रधानमंत्री ने बच्चों से सही बात की। यह तो नहीं कहा कि आप बड़े होकर भाजपा को वोट देना ! बच्चे खुश और उत्साहित थे। लखनऊ के एक मदरसे में लड़कियों के लिए भाषण सुनने का विशेष प्रबंध किया गया। एक दिन पहले नरेन्द्र मोदी अध्यापकों से बात कर हटे थे जब उन्होंने बताया था कि अध्यापन जीवन धर्म है, पेशा नहीं। प्रधानमंत्री ने इन दो दिनों में जो कुछ कहा और उनके आलोचकों ने जो आपत्ति की उसके बाद एक बार फिर देश का ध्यान, अध्यापन और अध्यापक पर केन्द्रित हो गया है। देश में लगभग 50 लाख अध्यापक हैं। अधिकतर का वेतन तथा काम करने की परिस्थितियां शोचनीय हैं। कुछ स्कूलों में काम कर रहे अध्यापकों के पास पक्की नौकरी है पर असंख्य निजी स्कूलों में अध्यापक का शोषण हो रहा है। सरकारी स्कूलों में वेतन इत्यादि सही मिलता है पर उनके काम करने की परिस्थिति बुरी है। ठीक इमारत नहीं। कमरे नहीं। डेस्क या ब्लैक बोर्ड नहीं। लड़कियों के लिए अलग शौचालय नहीं। शिमला के नजदीक एक सरकारी स्कूल के बच्चों को शौच के लिए नियमित तौर पर अध्यापक पंक्ति बना कर जंगल ले जाते हैं। बीएड की डिग्री जरूरी है लेकिन इसे समय की जरूरत के अनुसार आधुनिक नहीं किया गया। बहुत जरूरी है कि सरकारी अध्यापकों के लिए रिफ्रैशर कोर्स लगाए जाएं ताकि उन्हें मालूम रहे कि दुनिया भर में शिक्षा किस तरह दी जा रही है? पर सरकारी स्कूल में जो अध्यापक भर्ती हो गया वह रिटायर होने तक उसी तरह चलता जाता है। जो अध्यापक गांवों में हैं उनसे कोई सम्पर्क नहीं। यह भी मालूम नहीं कि वह नियमित अपनी कक्षा लेते भी हैं या नहीं? इस देश को पिछड़ा रखने में सरकारी स्कूलों की बड़ी भूमिका है। पिछले साल संसद में रखी गई रिपोर्ट के अनुसार 20 प्रतिशत अध्यापक अपनी कक्षा नहीं लेते। वेतन जरूर लेते हैं। पंजाब में कई सौ अध्यापक विदेश खिसक गए हैं। विभाग अब उन्हें ढूंढ रहा है। आज वही बच्चा सरकारी स्कूल में जाता है जो निजी स्कूल की फीस नहीं भर सकता। इंफ्रास्ट्रक्चर को बेहतर करने के लिए निजी क्षेत्र का सहयोग लेना चाहिए। बहुत लोग/ संस्थाएं / उद्योग योगदान डालना चाहेंगे। प्रादेशिक शिक्षा बोर्ड तथा सीबीएसई के स्तर में जमीन-आसमान की फर्क है। इस खाई को पाटने की जरूरत है। सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार देश

इस देश को पिछड़ा रखने में सरकारी स्कूलों की बड़ी भूमिका है। पिछले साल संसद में रखी गई रिपोर्ट के अनुसार 20 प्रतिशत अध्यापक अपनी कक्षा नहीं लेते, वेतन जरूर लेते हैं। दूसरा, समाज में शिक्षक की वह इज्जत नहीं रही जो पहले थी। इसका एक बड़ा कारण खुद शिक्षक हैं जो इज्जत के अधिकारी बनने का प्रयास नहीं करते। उनका सारा ध्यान अपने वेतन तथा 'ट्यूज' पर लगा रहता है, शिक्षा पर वह केन्द्रित नहीं। सभी ऐसे नहीं हैं। असंख्य ऐसे भी हैं जो अपनी जिम्मेदारी को अपना धर्म समझते हैं। पहले ऐसी बहुत सी मिसालें मिलती थीं, अब वह कम क्यों होती जा रही हैं? जो अध्यापक हाय! हाय! के नारे लगाते हैं उन्हें यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि बच्चे उनकी इज्जत करेंगे। बहुत से अध्यापक ट्यूशन देते हैं, कोचिंग केन्द्र चलाते हैं। सुबह पांच बजे से शुरू हो जाते हैं। अगर सही पढ़ाई करवाई जाए तो ट्यूशन की जरूरत क्यों पड़े?

में 10 लाख अध्यापकों की कमी है। सरकारी भर्ती एक स्कैंडल है। हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री ओमप्रकाश चौटाला अध्यापक भर्ती स्कैंडल के कारण ही जेल में हैं, लेकिन यह नहीं मानना चाहिए कि वह एक मात्र हैं। हर प्रदेश में भर्ती में घपला है। कई प्रदेश सस्ते अध्यापक भर्ती कर रहे हैं। ये पूरी तरह से योग्य भी नहीं होते, न उनकी सेवा ही सुरक्षित होती है और न ही उन्हें ग्रेड मिलते हैं पर भावी पीढ़ी इन्हें सौंप दी जाती है।

प्रधानमंत्री मोदी ने यह सवाल उठाया कि क्या वजह है कि अधिकतर लोग शिक्षक नहीं बनना चाहते? अध्यापन अब सम्मानित तथा उत्तम व्यवसाय क्यों नहीं रहा? इसके कई कारण हैं। एक वह वेतन तथा सुविधाएं नहीं मिलतीं जो दूसरे व्यवसायों में आजकल मिलती हैं। दूसरा, समाज में शिक्षक की वह इज्जत नहीं रही जो पहले थी। इसका एक बड़ा कारण खुद शिक्षक हैं जो इज्जत के अधिकारी बनने का प्रयास नहीं करते। उनका सारा ध्यान अपने वेतन तथा 'ड्यूज़' पर लगा रहता है, शिक्षा पर वह केन्द्रित नहीं। सभी ऐसे नहीं हैं। असंख्य ऐसे हैं जो अपनी जिम्मेदारी को अपना धर्म समझते हैं। उनके लिए यह पेशा नहीं। एक अध्यापक के बारे में पढ़ रहा था कि वह 26 वर्ष से मुफ्त पढ़ाई करवा रहे हैं। पंजाब की एक अध्यापिका स्कूल पहुंचने के लिए 120 किलोमीटर रोज सफर करती हैं। हमारे मास्टर दीवान चंद 90 वर्ष से अधिक आयु में भी गरीब बच्चों को मुफ्त पढ़ाते हैं। पहले ऐसी बहुत सी मिसालें मिलती थीं, अब वह कम क्यों होती जा रही हैं? शिक्षक यह क्यों नहीं समझता कि उसने बच्चों के चरित्र तथा भविष्य का निर्माण करना है ? जिन्होंने बच्चों की जिंदगियां बनानी हैं वह खुद धरने पर बैठ जाते हैं। जैसे धर्मेन्द्र 'शोले' फिल्म में पानी की टंकी पर चढ़ गए थे, पंजाब में नियमित तौर पर अध्यापकों का एक वर्ग ऐसा कर रहा है। अफसोस की बात है कि जिन्हें बढ़िया सरकारी ग्रेड भी मिले हुए हैं और अधिकतर के पास कारें, हैं, वह भी धरना देने के लिए तैयार रहते हैं, जो अध्यापक हाय! हाय! के नारे लगाते हैं उन्हें यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि बच्चे उनकी इज्जत करेंगे। बच्चों की पढ़ाई छोड़ कर हड़ताल करना और धरने पर बैठना शर्मनाक है। बहुत अध्यापक ट्यूशन देते हैं, कोचिंग केन्द्र चलाते हैं। सुबह पांच बजे से शुरू हो जाते हैं। स्कूल या कालेज में शिक्षा देने का उनका असली मकसद अपनी ट्यूशन/ कोचिंग के लिए छात्र आकर्षित करना है। अगर सही पढ़ाई करवाई जाए तो ट्यूशन की जरूरत क्यों पड़े? सरकार ने पाबंदी लगाई हुई है लेकिन कोई नहीं सुनता। अगर सम्मान चाहिए तो उन्हें सम्मान के अधिकारी भी बनना चाहिए। सरकार की नीतियां भी अध्यापक के काम को मुश्किल बना रही हैं। कुछ न कहो, हाथ न लगाओ, फेल होने पर भी पास करते जाओ, की बुद्धिहीन नीति से हम पढ़े-लिखे बेरोजगार बना रहे हैं या अनपढ़ उजड्ड। अगर बच्चा नालायक हैं तो उसे दसवीं तक पास क्यों किया जाए? अगर वह नियंत्रण में नहीं रहता तो उसे अनुशासित कैसे किया जाए? चंडीगढ़ में काकाओं (नेताओं तथा अफसरों की बिगड़ी औलाद) के उत्पात पर पत्रकार खुशवंत सिंह ने अपने जमाने को याद करते हुए सझाव दिया था कि 'छित्तर परेड' इस बिगड़ी औलाद को सही करने के लिए जरूरी है लेकिन आजकल छित्तर तो कहां अध्यापक चांटा भी नहीं लगा सकता। उसके खिलाफ केस हो जाएगा। हम सबने अपने स्कूली दिनों में कभी न कभी मार खाई हुई है। इससे नुकसान नहीं हुआ। हम में कोई हीन भावना नहीं आई। किसी ने आत्महत्या नहीं की। आगे के लिए दुरुस्त अवश्य हो गए।

जब अध्यापक का डर ही नहीं रहा अनुशासन आएगा कहां से? कपिल सिब्बल को बहुत चिंता थी कि बच्चों पर बहुत बोझ है। 'स्ट्रेस' है। पर हम सबने यह बोझ झेला है। कोई नुकसान नहीं हुआ। बच्चों की मेहनत करने की क्षमता को कम नहीं समझना चाहिए। यह नियम कि बच्चा कुछ भी कर ले उसे कुछ न कहा जाए। वास्तव में उन्हें बिगाड़ रहा है। मां-बाप भी रुकावट खड़ी करते हैं। वह बच्चे को किसी तरह के दंड के खिलाफ पुलिस में पहुंच जाते हैं। घरों में भी मां-बाप का डर जा रहा है। वह 'फ्रैंडस' बन गए हैं। अभिभावकों का एक वर्ग है जो बच्चों को अपने लाड़ प्यार या अपने पैसे से बिगाड़ रहा है। जब बच्चा बिगड़ जाता है तो अपने सिवाय सबको जिम्मेदार ठहराते हैं। अगर इतने रेप हो रहे हैं, अगर इतना नशा है तो परिवार भी तो इसके लिए जिम्मेवार हैं। पर नहीं। अगर शिक्षण संस्थाएं उन्हें अनुशासित करने का प्रयास करती हैं तो अभिभावक भी धरने पर बैठने के लिए तैयार रहते हैं जबकि घर में भी ऐसे लड़कों के साथ छित्तर परेड की जरूरत है।

सरकार, शिक्षण संस्थान, अध्यापक वर्ग तथा अभिभावक सभी को अपनी-अपनी भूमिका पर गौर करना चाहिए। पाठ्यक्रम में अनुशासन तथा कर्त्तव्य का उचित पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। बच्चों में संस्कार नहीं भरे जाते। सैक्यूलरवाद ने मूल्यहीन पीढ़ी बना दी है। स्कूल तथा कालेज जिंदगी का सामना करने के लिए बच्चों को तैयार करते हैं।

उनका काम आसान न बनाओ क्योंकि जिन्दगी भी कहां आसान है! कड़वी सच्चाई है कि शिक्षा के क्षेत्र को हर सरकार, केन्द्र या प्रादेशिक, ने धक्का दिया है। शिक्षा हमारी सरकार की सौतेली संतान है। बहुत कम खर्च किया जाता है । पंजाब में तो मिड-डे मील में कीड़े मिलने के बाद बच्चों ने खाने से मना कर दिया है। शिक्षा सरकारी प्राथमिकताओं में है ही नहीं, शिक्षक दिवस या बाल दिवस पर कुछ भी कहा जाए। आशा है कि प्रधानमंत्री मोदी बच्चों में जो दिलचस्पी दिखा रहे हैं उससे तस्वीर बदलेगी। यह देश प्रतिभा का खजाना है। मौका मिलना चाहिए। आखिर एक गांव के स्कूल में पढ़ने वाला चाय वाले का बेटा आज यहां देश का प्रधानमंत्री बन सबको प्रभावित कर रहा है। ❑

(सम्पादकीय-प्रताप)

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ द्वारा आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद जयपुर में सम्पन्न

उच्च शिक्षा नियामक आयोग बनाने पर बनी सहमति

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ द्वारा आयोजित, राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) एवं राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आतिथ्य में 13-14 सितम्बर 2014 को दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी 'उच्च शिक्षा में नियामक तंत्र' राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के मानविकी पीठ सभागार में सम्पन्न हुई। संगोष्ठी में देश भर से 14 राज्यों के राज्यस्तरीय संगठनों एवं विश्वविद्यालय संगठनों के 700 से अधिक शिक्षाविदों ने सहभाग किया। संगोष्ठी में पाँच विश्वविद्यालयों के वर्तमान कुलपति प्रो. बी.एल. शर्मा, प्रो. कैलाश सोडानी, प्रो. भागीरथ सिंह बिजारणिया, डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा एवं डॉ. देव स्वरूप तथा तीन पूर्व कुलपति डॉ. पी.एल. चतुर्वेदी, डॉ. एम.एल. कालरा एवं डॉ. लोकेश शेखावत, समाज नीति समीक्षण केन्द्र, नई दिल्ली के निदेशक डॉ. जे. के. बजाज, इग्नु के प्रो. एम.सी. शर्मा तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पूर्व अध्यक्ष एवं वर्तमान में यू.जी.सी. पुनर्संरचना समिति के अध्यक्ष डॉ. हरि गौतम उपस्थित रहे। संगोष्ठी में 102 लेख प्राप्त हुए, इनमें से चयनित 43 लेखों को 'मीमांसा' स्मारिका में मुद्रित किया गया जिसका विमोचन उद्घाटन समारोह के अवसर पर राजस्थान की माननीय मुख्यमंत्री श्रीमती वसुंधरा राजे द्वारा सम्पन्न हुआ।

राष्ट्रीय संगोष्ठी में पाँच उप-विषयों पर लम्बे विचार-मन्थन के पश्चात् कुछ बिन्दुओं पर सहमति बनी।

राष्ट्र के हितवर्धन के लिए गुणवत्तायुक्त शिक्षा का होना एक अनिवार्यता है और इसके लिए शिक्षा को स्वायत्त बनाना ही होगा। शिक्षा को नौकरशाही एवं राजनीति के मकड़जाल से मुक्त करने के लिए शिक्षा सम्बन्धी समस्त निर्णय शिक्षकों के द्वारा ही लिए जाएँ तब ही उच्च शिक्षा तन्त्र में आवश्यक सुधार सम्भव है। शिक्षण संस्थाओं को शैक्षिक, प्रशासनिक एवं वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करनी होगी और स्वायत्तता को जवाबदेही से जोड़ना होगा ताकि कोई भी संस्थान स्वायत्तता का दुरुपयोग न कर सके।

वर्तमान शिक्षा तंत्र सरकारी सहायता पर अत्यधिक निर्भर है परिणामस्वरूप सरकार वित्तीय सहायता के नाम पर अनेक तरीकों से शिक्षण व्यवस्था में हस्तक्षेप करती रही है। इस हस्तक्षेप से बचने के लिए शिक्षण संस्थाओं को पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए सरकार को शिक्षा के खर्च में बढ़ोतरी करनी होगी, शिक्षण संस्थाओं को फीस निर्धारण करने की पारदर्शी व्यवस्था करनी होगी। भामाशाहों, दानदाताओं, पूर्व छात्रों, एवं सामाजिक संस्थाओं को आर्थिक योगदान के लिए प्रेरित कर शिक्षण संस्थाओं की वित्तीयन व्यवस्था को सुधारा जा सकता है। उद्योगों एवं शिक्षण संस्थाओं को एक-दूसरे से जोड़ना होगा।

अब तक का अनुभव यह सिद्ध करता है कि शिक्षा सबकी पहुँच में हो इसके लिए केवल सरकार के भरोसे नहीं चला जा सकता है। अत: निजी सहभागिता को प्रोत्साहित करना होगा। ये सहभागिता ऐसे पारदर्शी उपबन्धों पर आधारित हो जिससे शिक्षा के व्यापारीकरण को रोका जा सके, शिक्षार्थी एवं शिक्षक का शोषण न हो और राष्ट्रहित सर्वोपरि बने। निजी विश्वविद्यालयों द्वारा फीस निर्धारण करने, शिक्षकों के वेतन एवं सेवाशर्तों, गुणवत्तायुक्त शिक्षा एवं अनुसंधान के लिए ऐसे प्रावधान करने होंगे जिनसे निजी शिक्षण संस्थाएं राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पूर्ण प्रतिबद्ध हों। ऐसी सहभागिता का एक ऐसा मॉडल प्रस्तुत करना होगा जो वर्तमान की विसंगतियों को दूर कर सके।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के 67 वर्ष में उच्चशिक्षा का परिदृश्य तो बदला परन्तु प्रबन्धन एवं संचालन के ब्रिटिश काल के मापदण्ड आज भी प्रचलन में हैं। इनकी व्यापक समीक्षा की आवश्यकता है। खण्ड-खण्ड में विचार की जाने वाली उच्च शिक्षा को पूर्णता एवं एकीकृत रूप में विचार करने की आवश्यकता है। प्रभावी संचालन एवं प्रबन्धन के लिए सम्बद्ध कालेज की कार्यप्रणाली विश्वविद्यालयों की प्रकृति एवं आकार, उनकी वित्त व्यवस्था आदि के लिए आधारभूत मानक बनाने की आवश्यकता है।

महाविद्यालयों की सम्बद्धता पर विचार करते हुए सुनिश्चित किया जाये कि एक विश्वविद्यालय से 50 से अधिक महाविद्यालय सम्बद्ध न हों और एक विश्वविद्यालय में 25,000 से अधिक छात्र न हों। प्रत्येक जिले में विश्वविद्यालय की स्थापना की जाये, संस्थानों को प्रारम्भ करने, बंद करने, वित्तीयन, मूल्यांकन, शिक्षा की गुणवत्ता, उत्तरदेयता, पारदर्शिता आदि के सम्बन्ध में व्यापक मानदण्ड स्थापित किये जायें, संस्थाओं का पूर्ण डिजिटेलाइजेशन हो, विभिन्न निकायों के मध्य समन्वय हो, उद्योग के साथ शिक्षण संस्थाओं का सहसम्पर्क बढे।

उच्च शिक्षा व्यवस्था में राष्ट्रीय स्तर पर पूर्णकालिक राष्ट्रीय उच्च शिक्षा नियामक आयोग स्थापित हो और देश के संघीय ढांचे के अनुकूल प्रत्येक राज्य में राज्य उच्च शिक्षा नियामक आयोग हो। इन आयोगों को संवैधानिक स्वायत्तता प्रदान की जाये।

सम्पूर्ण शिक्षा तन्त्र के सम्बन्ध में नीति निर्धारण करने एवं उसके नियमन करने एवं सभी के मध्य तालमेल स्थापित करने का अधिकार ऐसे आयोगों में निहित हो। ऐसे आयोग की सम्पूर्ण वित्त व्यवस्था सम्बन्धित राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार के बजट से की जाये। इसके प्रबन्धन बोर्ड में सुविख्यात शिक्षाविद हों और उद्योग एवं सामाजिक कार्यों से जुड़े पेशेवर व्यक्तियों को ही रखा जाये। यह पूर्णरूपेण नौकरशाही एवं राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त हो। यह बोर्ड सम्बन्धित विधायिका को उत्तर देय हो।

'उच्च शिक्षा में नियामक तंत्र' के दो दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद के उद्घाटन समारोह की मुख्य अतिथि श्रीमती वसुंधरा राजे, मुख्य मंत्री राजस्थान ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ एवं इससे जुड़े अन्य संगठनों के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की दिशा में किये जा रहे कार्यों की प्रशंसा की और कहा कि ऐसी गोष्ठियां होती रहनी चाहिए, जिससे शिक्षा का स्तर सुधर सके और शिक्षा के लिए एक रोड मैप तैयार हो सके। आपने इस अवसर पर कौशल विकास, पर्यटन, शिक्षक-प्रशिक्षण, भोजन एवं पोषण जैसे विश्वविद्यालय प्रारम्भ करने की बात की। आपने राष्ट्रीय परिसंवाद के निष्कर्षों को लागू करने पर भी सहमति जताई। समारोह में अध्यक्षीय भाषण में ग्रामीण विकास एवं पंचायतीराज मंत्री श्रीमान् गुलाब चन्द कटारिया ने कहा कि हिन्दुस्तान के बच्चों ने विश्व में डंका बजा रखा है, इन्हें तराशने की आवश्यकता है। देश की तस्वीर बदलने का चमत्कार शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। राष्ट्रीय परिसंवाद के विषय की प्रस्तुति प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल (महामंत्री अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ) ने की।

इस परिसंवाद के समारोप कार्यक्रम के मुख्य अतिथि राजस्थान सरकार में शिक्षा मंत्री श्री कालीचरण सराफ ने पूरे देश भर से पधारे शिक्षाविदों का इस महासंगम में स्वागत किया और परिसंवाद के निष्कर्षों को लागू करने की राजस्थान सरकार की प्रतिबद्धता स्पष्ट की। आपने गुणवत्तायुक्त शिक्षा हेतु मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे द्वारा शिक्षा विशेषज्ञ सलाहकार बोर्ड के गठन की घोषणा को शिक्षा मंत्री सराफ ने दोहराया और एक कालेज में 5000 से अधिक छात्र नहीं होंगे इसके निर्णय से अवगत कराया। आपने प्रत्येक संभाग में विश्वविद्यालय स्थापित करने के निर्णय की जानकारी प्रदान की। कार्यक्रम की अध्यक्षता, महासंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल ने की।

राष्ट्रीय परिसंवाद में दोनों दिवस महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री महेन्द्र कपूर, सह संगठन मंत्री ओमपाल सिंह, उच्च शिक्षा प्रभारी महेन्द्र कुमार, उपाध्यक्ष प्रो. रमेश चन्द्र सिन्हा, संयुक्त सचिव डॉ. श्याम पुण्डे, शैक्षिक मंथन मासिक के सम्पादक प्रो. सन्तोष पाण्डेय, राष्ट्रीय कोषाध्यक्ष बजरंग प्रसाद मजेजी, राज्यों के संयोजक, विश्वविद्यालय इकाइयों के प्रमुख कार्यकर्ता उपस्थित थे।

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय)

माध्यमिक संवर्ग के राज्य भर में दिये गये ज्ञापन

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रव्यापी आह्वान पर 22 सितम्बर 2014 को माध्यमिक शिक्षा संवर्ग के राष्ट्रीय मांग पत्र को लेकर जिला कलक्टर के माध्यम से माननीय प्रधानमंत्री, माननीय संसाधन मंत्री को ज्ञापन प्रेषित किया।

माध्यमिक क्षेत्र के उपाध्यक्ष नवीन कुमार शर्मा ने बताया कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के निर्णयानुसार सम्पूर्ण देश के जिला मुख्यालयों पर सम्बद्ध संगठन की जिला इकाइयों द्वारा 22 सितम्बर 2014 को माध्यमिक क्षेत्र में शिक्षा की दशा एवं शिक्षकों की माँगों का मांग पत्र सहित जिला कलक्टर के माध्यम से माननीय प्रधानमंत्री, माननीय संसाधन मंत्री एवं राजस्थान की माननीया मुख्यमंत्री व माननीय शिक्षामंत्री को ज्ञापन देकर माध्यमिक क्षेत्र की स्थिति से अवगत करवाते हुए मांग पत्र पर त्वरित कार्यवाही का आग्रह किया गया।

साथ ही संगठन का शिष्टमण्डल प्रदेश उपाध्यक्ष उमराव लाल वर्मा के नेतृत्व में जिला कलक्टर से मिला और उन्हें प्रधानमंत्री, मानव संसाधन मंत्री, राजस्थान के मुख्यमंत्री एवं शिक्षामंत्री के नाम ज्ञापन सौंपते हुए ज्ञापन प्रेषित करने का आग्रह किया। मांग पत्र की प्रमुख माँगों में स्वायत्त माध्यमिक शिक्षा आयोग का केन्द्र एवं राज्य स्तर पर गठन करते हुए जी.डी.पी. का 10 प्रतिशत केन्द्र सरकार द्वारा तथा राज्य सरकार द्वारा बजट का 30 प्रतिशत व सुनिश्चित करते हुए राष्ट्रीय अस्मिता एवं भारतीय जीवन मूल्यों से युक्त शिक्षा पद्धति की पुर्नस्थापना शामिल है। सम्पूर्ण देश में शिक्षा की स्वतंत्रता एवं स्वायतत्ता को बहाल करते हुए शिक्षा सम्बन्धी सभी निर्णयों में शिक्षकों की भागीदारी सुनिश्चित करने का भी आग्रह मांग पत्र में किया गया है।

जिला कलक्टरों को सौंपा मांग पत्र

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ ने देश भर में 18 सूत्रीय मांग पत्र राज्यों के सम्बद्ध संगठनों की जिला इकाई द्वारा जिला कलेक्टरों को सौंपा है। महामंत्री प्रो. जे.पी. सिंघल ने बताया कि माध्यमिक शिक्षा संवर्ग की राष्ट्रीय स्तर की मांगों के संदर्भ में पूरे देश में जिला मुख्यालयों का जिला कलेक्टरों को 18 मांगों का पत्र दिया गया। साथ में एक-एक प्रति राज्यों के मुख्यमंत्रियों एवं शिक्षामंत्री को भी दी गई। इन मांगों में स्वायत्त माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन केन्द्र और राज्य स्तर पर, शिक्षकों के खाली पदों को भरने, नई पेंशन योजना वापस लेने, शैक्षिक गुणवत्ता बनाए रखने, सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष करने एवं अनुकम्पा के आधार पर आश्रितों की नियुक्ति समेत 18 मांगें शामिल हैं।

वाराणसी में शिक्षक सम्मान कार्यक्रम सम्पन्न

शिक्षक देश का निर्माता है। शिक्षक से समाज और राष्ट्र को बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। शिक्षक छात्र को कहाँ तक पहुँच पाना है इसकी दिशा बताता है। हर छात्र के जीवन में शिक्षक के मार्गदर्शन ही निरन्तर मार्ग बनाता है तथा दिशा देता रहता है। शिक्षा के ढाँचे में परिवर्तन की आवश्यकता है किन्तु शिक्षक रोल मॉडल बने यह हमारी भी आकांक्षा है।

प्रो. पृथ्वीश नाग, कुलपति महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी ने मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए कहा कि छात्रों की समस्या को शिक्षक समाधान दें। छात्राओं के प्रति उनकी शिक्षा देने की प्राथमिकता की चिन्ता है। 7 सितम्बर 2014 को प्रो. नाग श्री अग्रसेन कन्या पी.जी. कॉलेज, वाराणसी के सभाकक्ष में राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ द्वारा आयोजित शिक्षक सम्मान संगोष्ठी में मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए कहा कि शिक्षकों की एक गम्भीर समस्या है। प्रकार और वेतनमान का भेद है, यह भेद मिटना चाहिए। उच्च शिक्षा स्तर पर भी शिक्षा में कई प्रकार की संख्यायें हैं, अनुदानित, स्वायत्तशासी, डीम्ड और स्ववित्तपोषित पाठ्यक्रम। शिक्षा के ढाँचे में परिवर्तन की जरूरत है। समारोह में अध्यक्ष पद से बोलते हुए पूर्व कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रो. देवेन्द्र प्रताप सिंह ने कहा कि सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन्न का जीवन बहुत विलक्षण है तथा अध्यापक के लिए उनका जन्मदिन अध्यापक की प्रतिष्ठा को गौरवान्वित करता है। डॉ. राधाकृष्णनन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में महामना पं. मदन मोहन मालवीय के स्थान पर और उनके आग्रह पर कुलपति बनाये गये। यह एक योग्य अध्यापक की खोज थी। वे कई जगह एक साथ आचार्य थे। वे सर्वमान्य थे तथा संयोग है कि समाज में आज अध्यापन सर्वमान्य है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में महामना द्वारा उन्हें ग्रेट हिन्दू कहा जाता था। उन्होंने हिन्दुत्व के बारे में विचारधारा को स्थापित किया। वे अन्तर्राष्ट्रीय मान्य मनीषी थे। यह है शिक्षा का सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन्न द्वारा प्रेषित संवेग। अपने अवकाश प्राप्त शिक्षकों के सम्मान पर सबके प्रति शुभकामना दी। कुल 53 अध्यापकों को सम्मान किया गया। चाणक्य को हम देखें तो ऐसा शिक्षक हमारा आदर्श है।

वाराणसी के महापौर श्री रामगोपाल मोहले ने कहा कि शिक्षक समाज का दर्पण है, वह कभी रिटायर नहीं होता, जीवन पर्यन्त न सिर्फ छात्रों को बल्कि सम्पूर्ण समाज का मार्गदर्शन करता है और उन्हें मानवीय गुणों और नैतिक मूल्यों को ओत-प्रोत करता है। उन्होंने भी समस्त शिक्षकों को अपनी हार्दिक शुभकामनाएं व्यक्त की।

विषय स्थापना प्रदेश अध्यक्ष डॉ. दीनानाथ सिंह ने किया तथा कहा कि अध्यापकों की कम हो रही संख्या चिन्ता का विषय है। आपने कहा कि शिक्षक छात्र को केवल शिक्षा नहीं देता अपितु उसे समाज और राष्ट्रीय जीवन देता है, इस कारण शिक्षक निर्माणकर्ता है। राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय सह संगठन मंत्री श्री ओमपाल जी ने कहा कि चरित्र का निर्माण शिक्षा से सम्भव है। इसकी पूर्ति अध्यापक करता है। श्री ओमपाल सिंह ने महासंघ के संगठनात्मक पक्ष को रखा। महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. मधु अस्थाना, प्रबन्धक श्री संदीप अग्रवाल एवं प्रबंध समिति के सभापति ने अतिथियों एवं शिक्षकों का स्वागत किया।

हिन्दी दिवस पर आयोजन

राजकीय महाविद्यालय केकडी (अजमेर) में रुक्टा (राष्ट्रीय) इकाई के तत्वावधान में हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया। समारोह की अध्यक्षता प्राचार्य डा. रेनू शर्मा ने की तथा मुख्य वक्ता हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री देवी लाल जोशी थे समारोह के संयोजक श्री अनिल गुप्ता थे। श्री अनिल गुप्ता ने गांधी जीवन दर्शन व गांधी के हिन्दी प्रेम को विस्तृत रूप से प्रस्तुत करते हुए अंग्रेजों के सांस्कृतिक संदूषण के षड्यंत्र द्वारा मानसिक रूप से गुलाम किन्तु भौतिक रूप स्वतंत्र दिखने वाले भारतीयों के उत्पादन में हिन्दी के तिरस्कार व अंग्रेजी के महिमा मण्डन की व्यूहरचना पर प्रकाश डाला।

श्री देवी लाल जोशी ने वर्तमान हिन्दी भाषा स्वरूप के उदय और इतिहास व अंग्रेजी की सहोबियत की प्रतीकात्मकता व अपने ही देश में हिन्दी के प्रति हीनता के षड्यंत्र पर प्रकाश डाला।

अपने उद्बोधन में प्राचार्य डा. रेनू शर्मा ने हिन्दी के महत्व और लोक व आम भाषा के रूप में प्रकाश डाला उन्होंने सार्वजनिक जीवन व सार्वजनिक सेवा में हिन्दी की महता व संघ लोक सेवा आयोग के संबंध में सीसेट पर प्रकाश डाला। समारोह का संचालन श्री विनय कुमार शर्मा ने किया।

शिक्षक संघ की उदयपुर इकाई ने कराया विरोध दर्ज

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) जिला शाखा उदयपुर द्वारा जिलाध्यक्ष जगदीश चन्द्र उपाध्याय की अध्यक्षता में मुख्य अतिथि पूर्व प्रदेश सभाध्यक्ष अर्जुन मंत्री के सानिध्य में दिनांक 14 अगस्त, 2014 को जारी विद्यालय एकीकरण आदेशों की विसंगतियों, समानीकरण एवं विद्यालय समय 1 सितम्बर 2014 से प्रात: 10 बजे से 4 बजे तक रखने के विरोध में तथा शिक्षक दिवस पर राजस्थान सरकार के शिक्षा मंत्री, ग्रामीण विकास एवं पंचायतराज मंत्री व अतिरिक्त मुख्य सचिव, शिक्षा द्वारा शिक्षकों व राजस्थानवासियों के लिए कहे गये अमर्यादित भाषा के विरोध में जिला कलेक्टर कार्यालय के बाहर सैंकडों शिक्षकों ने जोरदार नारेबाजी कर काली पटटी बांध कर विरोध किया तथा राजस्थान की मुख्यमंत्री वसुन्धरा राजे के नाम जिला कलेक्टर महोदय को ज्ञापन सौंपा।

जिला कोषाध्यक्ष बसन्तीलाल श्रीमाली ने एकीकरण में रही विसंगतियों को पुनर्सीमा होने तक एकीकरण के प्रस्तावों की क्रियान्विती स्थगित करने की मांग की।

जिला मंत्री चन्द्रप्रकाश मेहता ने आरोप लगाया कि शिक्षा अधिकारियों ने बन्द कमरों में बैठ कर स्कूलों को मर्ज करने के प्रस्ताव तैयार किये। जिसके कारण से ये विसंगतियां पैदा हुई ।

जिलाध्यक्ष जगदीश चन्द्र उपाध्याय ने कहा कि एकीकरण के तहत स्कूल की भौगोलिक स्थिति, छात्र संख्या, समायोजित स्कूल के भवन की दशा आदर्श स्कूल की दूरी आदि बिन्दुओं को दरकिनार कर तैयार प्रस्तावों के कारण यह समस्या रही।

हिमाचल प्रदेश महिला संवर्ग की बैठक सम्पन्न

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ के महिला संवर्ग की बैठक कॉफी हाऊस हॉल कुसुम्पटी शिमला में सम्पन्न हुई।

इस बैठक में बतौर मुख्यातिथि राष्ट्रीय सचिव प्रियम्वदा सक्सेना व विशिष्ट अतिथि श्रीमती रिचा गर्ग प्रान्त महिला उपाध्यक्ष दिल्ली अध्यापक परिषद उपस्थित हुई।

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ के प्रान्ताध्यक्ष पवन मिश्रा ने बताया इस वर्ष देश भर में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ ने महिला कार्यकर्ता सहभाग वृद्धि वर्ष के तौर पर लिया है। इसी क्रम में हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ ने पहली बार अलग से महिला संवर्ग की बैठक आयोजित की है। आगामी दिनों में ऐसी बैठकें जिला स्तर पर आयोजित की जाएगीं। महिलाओं के शिक्षा क्षेत्र में योगदान को देखकर, महिलाओं की समस्याओं की अधिक जानकारी के लिए, महिलाओं की अलग से बैठक आवश्यक है।

इस मौके पर शिक्षक महासंघ की महिला संवर्ग की प्रान्त उपाध्यक्ष ललिता वर्मा ने संगठन परिचय रखा। राष्ट्रीय सचिव, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ श्रीमती प्रियम्वदा सक्सेना ने आह्वान किया कि महिला अध्यापिकाओं को राष्ट्र निर्माण में अपनी सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। महिलाएं किसी भी राष्ट्र की नींव होती है। उनके योगदान के बिना राष्ट्र निर्माण सम्भव नहीं। वक्त आ गया है कि शिक्षा नीतियों में महिलाओं को सक्रिय भूमिका निभानी होगी।

हिमाचल प्रदेश कार्यकारिणी बैठक सम्पन्न

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ की बैठक प्रांताध्यक्ष पवन मिश्रा की अध्यक्षता में महादेव मंदिर धनोट (सुंदरनगर) में सम्पन्न हुई। बैठक में महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर ने कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन किया।

प्रदेश अध्यक्ष पवन मिश्रा ने सम्बोधित करते हुए कहा कि महासंघ शिक्षकों के हितों के लिए हमेशा अग्रसर रहता है। उन्होंने कहा कि शिक्षकों के हितों से संबंधित एक मांग पत्र प्रदेश सरकार के मुख्यमंत्री, शिक्षा सचिव व शिक्षा निदेशक को प्रेषित किया जाएगा। उन्होंने कहा कि यदि शिक्षकों की मांगों पर गौर नहीं होता तो संघर्ष का रास्ता अपनाया जाएगा। इस अवसर पर प्रांत महामंत्री रजनीश चौधरी, सह संगठन मंत्री अशोक, अतिरिक्त महामंत्री विरेन्द्र चढ़ढा, चन्द्रदेव ठाकुर, वित सचिव जयशंकर, कार्यालय सचिव विनोद सूद, प्रदेश कार्यकारिणी सदस्य जगवीर जामवाल, जिलों के अध्यक्ष, मंत्री आदि कार्यकर्ता उपस्थित थे।

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ ने सरकार को चेताया

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के निर्देश पर 22 सितम्बर को विभिन्न जिलों के शिक्षा उपनिदेशकों के माध्यम से प्रधानमंत्री सहित अन्य मंत्रियों को मांगों का ज्ञापन सौंपा। शिक्षक महासंघ की सभी जिलों की इकाइयों ने केन्द्रीय सरकार तथा हिमाचल प्रदेश सरकार को चेतावनी दी है कि यदि मांगों पर गौर नहीं किया गया तो राष्ट्र स्तर पर अपने हकों के लिए आंदोलन की रणनीति तैयार की जाएगी। प्रदेश शिक्षक संघ ने कहा कि नई शिक्षा नीति बिल्कुल नहीं चलेगी क्योंकि यह सरासर अध्यापकों के साथ अन्याय है। संघ ने यह भी चेतावनी दी है कि जो प्रदेश सरकार तथा शिक्षा विभाग ने नई शिक्षा नीति के तहत शिक्षकों को 70 से 150 रुपए प्रति पीरियड देने का निर्णय लिया है यह चलने नहीं दिया जाएगा। इसके अलावा शिक्षा पर जो राजनीति की जा रही है उसे भी बिल्कुल बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। महासंघ ने समान काम के लिए समान वेतनमान के सिद्धान्त के आधार पर राष्ट्रीय वेतनमान नीति निर्धारित करने की मांग की है। इसके अलावा माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन केन्द्र और राज्य स्तर पर शिक्षा पर बजट का 30 प्रतिशत व्यय, राष्ट्रीय अस्मिता एवं भारतीय जीवन मूल्यों से युक्त शिक्षा पद्धति की संरचना करने।

म.प्र. शिक्षक संघ द्वारा राज्य भर में दिये गये ज्ञापन

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के आह्वान पर म.प्र. शिक्षक संघ की रीवा, छिन्दवाड़ा, बैतूल, टीकमगढ़, जबलपुर, नरसिंहपुर, राजगढ़, सिवनी, नीमच आदि जिला इकाइयों ने प्रधानमंत्री के नाम ज्ञापन सौंपा। प्रांताध्यक्ष प्रदीप कुमार सिंह के नेतृत्व और निर्देशों के साथ सभी जिलों के जिलाध्यक्षों ने सम्बन्धित जिलों में 13 सूत्रीय मांगों का ज्ञापन जिला कलेक्टर को सौंपा गया। ज्ञापन में प्रधानमंत्री के अलावा मानव संसाधन विकास मंत्री, मुख्यमंत्री, स्कूल शिक्षा मंत्री को भी अपनी मांग से संघ ने अवगत कराया है। ज्ञापन में रिक्त पदों पर नियमित शिक्षकों की नियुक्ति, शिक्षकों से गैर-शिक्षकीय कार्य न कराने, 2004 के पूर्व की पेंशन योजना बहाल करने, प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में करने, नैतिक शिक्षा की व्यवस्था करने सहित अन्य मांगों का उल्लेख किया गया।